वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला पुष्प-७१

पुरुदेव नाटक

गणिनी आर्यिका श्रीज्ञानमती माताजी

प्रकाशक

दिगम्बर जैन, त्रिलोक शोध संस्थान,

हस्तिनापुर (मेरठ) उ० प्र०

द्वितीय आवृत्ति	वीर नि० सं० 2523	मूल्य :
5000	जुलाई-1997	8.00

पुरुदेव नाटक

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

समय—प्रातः काल
स्थान—रंगभूमि

सम्मिलित प्रार्थना

ॐअर्हंतो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम् ॥

मंगल-गीत

पुरुदेव की वाणी अखिल विश्व में अमृतकण बरसाये।
पुरुदेव की वाणी....॥
युग की आदी में ऋषभदेव ने यहाँ पुण्य अवतार लिया।
माता मरुदेवी के आँगन में, उत्सव अपरंपार हुआ ॥
आये हैं इन्द्र सभी मिलकर भक्ति से अति हरषाये।
पुरुदेव की वाणी....॥१॥

इस जंबूद्वीप के मध्य सुदर्शन मेरु सुवर्णमयी सुन्दर।
है एक लाख योजन ऊंचे, पर पांडुकशिला बनी मनहर ॥
जिन शिशु को सुरपति ले जाकर वहाँ पर अभिषेक रचाएँ।
पुरुदेव की वाणी....॥२॥

जो चन्द्रकिरण चंदन गंगाजल से भी है शीतल वाणी।
यह अनेकांतमय सत्य अहिंसा धर्मरूप है जिनवाणी ॥
तुम कर्णपुटों से पियो इसे सब जन्म रोग नश जाये।
पुरुदेव की वाणी....॥३॥

घट-घट का अज्ञान अंधेरा उसको दूर भगाती है।
जन-जन के मानस मंदिर में यह ज्ञान की ज्योति जलाती है ॥
तुम पूर्ण 'ज्ञानमति' प्रगट करो जिससे अशेष दुख जाये ॥
पुरुदेव की वाणी....॥४॥

प्रस्तावना

सूत्रधार–अहा! हा! आज प्रत्यूष बेला में ही मेरे कर्ण में जिनेन्द्रदेव की स्तुति के शब्द पड़े हैं। और मेरे हृदय में आह्लाद तथा उल्लास बढ़ता ही जा रहा है। लगता है मेरी कीर्तिपताका आकाश मंडल में लहराने वाली है। (आनन्द में विभोर हो झूमने लगता है, तभी नर्तकी प्रवेश करती है)

नर्तकी–महानुभाव! इस महोत्सव में आये हुए लोग आपके अभिनय की प्रशंसा सुनकर यहीं पर चले आ रहे हैं। देखिए! सभा मंडप तो खचाखच भर गया है।

सूत्रधार–(खुश होकर) हाँ, भद्रे! मुझे तो आज इस रंग-मंच पर वहुत ही सुन्दर रोमांचकारी नाटक प्रस्तुत करना है।

नर्तकी–वह कौन-सा है ? मुझे भी तो बतलाइये!

सूत्रधार–पुरुदेव नाटक!

नर्तकी–(आश्चर्य से) ओहो! यह नाम तो मैंने आज ही सुना। भला ये पुरुदेव कौन हैं ?

सूत्रधार–वाह! तुम्हें पता ही नहीं। इस युग के आदि-विधाता भगवान् आदिनाथ ही तो पुरुदेव हैं। इन्द्र ने स्वयं इनके ऋषभदेव और पुरुदेव ये दो नाम रक्खे थे।

नर्तकी–हाँ, हाँ, याद आ गई। दक्षिण में भगवान बाहुबली को 'पुरुदेवसूनु' कहते हैं। हे आर्य! तो आप इनके बारे में क्या-क्या विशेष दिखलाएंगे ?

सूत्रधार–ये महापुरुष तीर्थंकर इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कर्मभूमि

के प्रारंभ में हुए हैं। इन्होंने ही तो सारी जनता को जीने की कला सिखाई थी। इनके बारे में तो जितनी विशेषताएँ हैं, वे अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेंगी।

नर्तकी–आपने जो बीच में जंबूद्वीप कहा, यह कौन-सा द्वीप है? और कहाँ पर है? पहले आप हमें इसी के बारे में कुछ समझा दीजिए।

सूत्रधार–अच्छा, क्या तुमने नहीं सुना, यह जंबूद्वीप की रचना तो हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र में बन चुकी है। वहीं जाकर दर्शन करके आपको पूरी जानकारी मिल सकेगी। फिर भी मैं थोड़े में आपको बता दूँ। इस मध्यलोक में सर्वप्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है। यह एक लाख योजन विस्तृत और थाली के आकार का गोल है।

नर्तकी–आज तो भूमंडल को नारंगी जैसा गोल मानते हैं और आप थाली जैसा कह रहे हैं!

सूत्रधार–हाँ, सुनिए। यह पूरा द्वीप तो थाली जैसा ही गोल है। इसमें १९०वाँ भाग भरतक्षेत्र है। इस भरतक्षेत्र में भी छह खण्ड हो गये हैं।

नर्तकी–अच्छा, जिन्हें चक्रवर्ती जीतते हैं।

सूत्रधार–हाँ, इस छह खण्ड के मध्य का जो आर्यखंड है, उसकी पृथ्वी नारंगी जैसी नहीं तो भी अर्द्ध नारंगी जैसी ऊपर को उठी हुई गोल है।

नर्तकी–अच्छा, अब मैं समझ गई। इसी आर्यखण्ड की अयोध्या नगरी में भगवान् वृषभदेव ने जन्म लिया था। आर्य पुरुष! आप यह तो बताइये कि इस जंबूद्वीप को हस्तिनापुर में बनाने का उपक्रम भला किनने किया ?

सूत्रधार–भद्रे! तुमने आर्यिका ज्ञानमती माता जी का तो नाम सुना होगा! उनके कुछ बड़े ग्रन्थ और छोटी-छोटी पुस्तकें भी पढ़ी होंगी!

नर्तकी–हाँ, कुछ वर्ष पूर्व उनका अष्टसहस्री ग्रन्थ देखा था जो कि बड़ा दुरुह था।

सूत्रधार–हाँ, तो वे ही आर्यिका ज्ञानमती माता जी इस जंबूद्वीप की प्रेरणा स्रोत हैं। उनकी पचासों सरल पुस्तकें भी निकल चुकी हैं। यह पुरुदेव

नाटक भी तो उन्हीं की अमूल्य कृति है।

नर्तकी–(हर्ष से) अच्छा, तब तो आप इस नाटक को शीघ्र ही प्रस्तुत कीजिए किन्तु मुझे बीच में एक बात और बता दीजिए कि माता जी ने इस जंबूद्वीप रचना के लिए हस्तिनापुर क्षेत्र क्यों चुना ?

सूत्रधार–सुनिए! युग की आदि में हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने स्वप्न में सुमेरु पर्वत देखा था। पुनः उसी दिन उनके यहाँ भगवान् ऋषभदेव की प्रथम पारणा हुई थी।

नर्तकी–मैं समझ गई। उन्हीं के स्वप्न को साकार करने के लिए माता जी ने यहाँ 'सुमेरु पर्वत' का निर्माण कराना उचित समझा।

सूत्रधार–हाँ, हाँ, इसीलिए इस जंबूद्वीप रचना के लिए इस पवित्र क्षेत्र का चयन हुआ है।

नर्तकी–महानुभाव! अब दर्शकगण की उत्कण्ठाएँ बढ़ती जा रही हैं। अब तो कुछ दृश्य उपस्थित करिए।

सूत्रधार–बहुत अच्छी बात है। इस नाटक के देखने वाले बहुत पुण्यशाली होंगे और आगे के लिए भी पुण्य रत्नों की गठरी बाँध कर यहाँ से ले जाएँगे।

नर्तकी–तब तो वे चोर हो जाएँगे ?

सूत्रधार–नहीं, नहीं, वे पुण्य रत्नों को ले जाते हुए भी साहूकार, सज्जन और महापुरुष कहलाएँगे। यही तो इस नाटक की विशेषता होगी। अच्छा तो आप अब उन पुरुदेव की भक्ति में तल्लीन हो अपनी नृत्यकला को दिखलाइए।

(नर्तकी नृत्य करने लगती है। पुनः दोनों निकल जाते हैं)

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

समय–मध्याह्न

स्थान–इन्द्र सभा

(सौधर्म इन्द्र अपने सिंहासन पर बैठे हुए हैं। पास में अनेक देवगण बैठे हुए हैं। इन्द्रसभा लगी हुई है।)

इन्द्र–(प्रसन्न मुद्रा में) अहो! आज हमें मध्यलोक चलना है।

देव नं० १–(हाथ जोड़कर) स्वामिन्! किसलिए ?

इन्द्र–भरतक्षेत्र में अब कर्मभूमि आने वाली है। इसलिए वहाँ अयोध्या की रचना करनी है।

देव नं० २–(खुश होकर) ओहो! हमारे धन्य भाग्य हैं, उसी नगरी में तो तीर्थंकर अवतार लेंगे।

इन्द्र–हाँ-हाँ, चलो जल्दी चलें।

(सभी देवगण इन्द्र के साथ मध्यलोक के भरतक्षेत्र में आ जाते हैं।)

बृहस्पति–अथ आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्ड अस्मिन् मध्यभागे 'अयोध्या' नामनगर्याः निर्माणं विदध्महे।

वहाँ पर नाभिराज मरुदेवी आदि अनेक जोड़े एकत्रित हैं। (इन्द्र क्षणभर में उस बगीचे में एक ८१ खंड का महल बना देते हैं। गुरु बृहस्पति हाथ में कलश लेकर आम के पत्ते से पुण्याहवाचन कर रहे हैं)।

बृहस्पति–(नूतन मकान में पत्ते से जल छिड़कते हुए–उच्च स्वर से) ऊँ पुण्याहं पुण्याहं लोकोद्योतनकरा अतीतकालसंजाताः....चंतुर्विंशति परमदेवाश्चवः प्रीयंताम् प्रीयंताम् ॥ (इन्द्र से) हे इन्द्रराज् ! इस राजभवन का शुद्धीकरण हो चुका है।

इन्द्र–(हाथ जोड़कर नाभिराज से) हे महाराज! अब आप महारानी मरुदेवी सहित इस राजभवन में प्रवेश कीजिए।

सब देवगण–जय हो महाराजा नाभिराज की जय हो, महारानी मरुदेवी

की जय हो। (भवन में सब प्रवेश करते हैं, पुनः सब देवगण नाभिराज मरुदेवी की पूजा करते हैं, वस्त्राभरण भेंट करते हैं)।

इन्द्र–(सभी युगलियों से) हे महानुभावो! ये नाभिराज अन्तिम कुलकर हैं। इस भरतक्षेत्र का यह आर्यखण्ड है। इसके ठीक बीच में मैंने अयोध्या नगरी की रचना कर दी है। अब आप लोग इन्हीं के अनुशासन में रहेंगे।

सभी युगलिया–जो आज्ञा इन्द्र महाराज की ! चौदहवें कुलकर महाराज नाभिराज की जय हो।

(इन्द्र नाभिराज की आज्ञा लेकर अपने स्वर्गलोक को चले जाते हैं)।

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

समय–प्रातः

स्थान–इन्द्रसभा

इन्द्र–हे कुबेर! जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में आज से छह महीने बाद तीर्थंकर भगवान् स्वर्ग से मध्यलोक में अवतार लेने वाले हैं। अतः आप वहाँ जाकर उस आर्यखण्ड की अयोध्या नगरी को इतनी सुन्दर सजा दो कि वह सुवर्णमयी दिखने लगे।

कुबेर–अहो हाँ! हमारे बहुत पुण्य का उदय आया है जो आज ऐसा पुण्य अवसर मिला है।

इन्द्र–हाँ, तीर्थंकर प्रभु के कल्याणक मनाने का अवसर मिलना महान् पुण्य का सुयोग है। हे धनपते! आप आज से ही वहाँ माता मरुदेवी के आँगन में उत्तम-उत्तम रत्नों की वर्षा शुरू कर दो।

कुबेर–(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा आपकी। (चला जाता है)।

(कुबेर प्रतिदिन माता के आँगन में रत्नों की मोटी-मोटी धारा बरसाता है। राज नाभिराज उन रत्नों को लेकर प्रजा को बाँट रहे हैं।)

श्रावक–(पत्नी से) चलो, महाराज नाभिराज के दर्शन कर आयें।

श्राविका–हाँ, हाँ! चलो वहाँ तो रत्न बँट रहे हैं।

श्रावक–ऐं! बात तुम्हें कैसे मालूम पड़ी।

श्राविका–हमें तो हमारी सहेली ने बताया है।

श्रावक नं० २–माता मरुदेवी के आँगन में कुबेर प्रतिदिन साढ़े बारह करोड़ रत्न बरसाता है।

श्रावक नं० ३–हाँ, कुछ दिन बाद इनके घर में तीर्थंकर अवतार लेंगे।

श्राविका नं० २–चलो हम भी रत्न मांग लायें।

श्राविका नं० १–अपने यहाँ क्या कमी है जो माँगने जायें।

श्रावक नं० १– भाई! कमी की बात नहीं है। तीर्थंकर के कल्याणक में जो रत्न बरसे हैं उन्हें लेने में क्या दोष है ? वह तो बड़े भाग्य से मिलते हैं।

श्राविका नं० १–तो चलो हम भी चलें, स्वर्गों से बरसाए गए रत्नों को देखें तो सही।

(इस बीच एक श्रावक आकर रत्न दिखाता है)

सभी लोग–ओहो! इन रत्नों की चमक तो देखो, सूर्य की चमक इनके आगे फीकी है। चलो-चलो, हम सभी महाराज नाभिराज के दरबार में चलें।

(सब आकर रत्न लेने लगते हैं)

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

समय–पिछली रात्रि

स्थान–राजमहल

(माता मरुदेवी सोई हुई १६ स्वप्न देख रही हैं। देवियाँ सेवा में रत हैं। (देवियाँ सुप्रभात बोल रही हैं–वीणा आदि बजाते हुए)। माता 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहते हुए उठकर बैठ जाती हैं। ध्यानमुद्रा से महामंत्र का

९ बार जाप करती हैं।

भास्वत्प्रदीप निभधर्म कथोपदेश-
दीपेन यस्य दलिते तमसां प्रसंगे।
पश्यंति मुक्तिपदवीं मुनयः सुखेन
स श्री जिनो जनयतात्तव सुप्रभातम् ॥

मरुदेवी–(स्वगत) अहा हा! आज मैंने बहुत बढ़िया स्वप्न देखे हैं।

देवी नं० १–(हाथ जोड़कर) माता वह क्या हैं ? हमें भी बताओ।

मरुदेवी–देवियो! स्नान आदि से निवृत्त हो राजसभा में चलूँगी। वहीं पतिदेव से इन स्वप्नों का फल पूछूँगी। तभी तुम सब सुन लेना।

देवी नं० १–(हँसकर) हाँ, हाँ, माता हमको क्यों बतायेंगी, पहले तो अपने स्वामी को बतायेंगी।

देवी नं० २–बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

देवी नं० ३–सखि! माता के स्नान की जल्दी ही व्यवस्था करो।

देवी नं० ४–हाँ सखि! उबटन, गर्म जल आदि सब तैयार है।

(माता क्षणेक में तैयार हो जाती हैं। देवियाँ उन्हें सजा रही हैं। कोई मुकुट बाँध रही है, कोई हार पहना रही है। सभी वहाँ से चलकर राजसभा में आ जाती हैं। माता मरुदेवी और सभी देवियाँ नाभिराज को प्रणाम करती हैं।)

मरुदेवी–हे स्वामिन्! आपको नमस्कार हो।

सर्व देवियाँ–(एक स्वर से) पिताजी प्रणाम।

नाभिराज–आइये, बैठिये! (मरुदेवी को अपने निकट आसन पर बैठने का संकेत करते हैं। वे आसन पर बैठ जाती हैं और सभी देवियाँ नीचे बैठ जाती हैं।)

मरुदेवी–(हाथ जोड़कर) नाथ! आज पिछली रात्रि में मैंने कुछ उत्तम स्वप्न देखे हैं। आपके श्रीमुख से उनका फल सुनना चाहती हूँ।

नाभिराज–देवि! कहिये वे स्वप्न क्या-क्या हैं ?

मरुदेवी–स्वामिन्! पहले स्वप्न में मैंने बहुत बड़ा सफेद ऐरावत हाथी देखा है, जो कि सुन्दर गर्जना कर रहा है।

नाभिराज–देवि! तुमने जो ऐरावत हाथी देखा है उसका फल यह है कि 'तुम त्रिभुवन के गुरु ऐसे तीर्थंकर पुत्र को जन्म दोगी।'

मरुदेवी–दूसरे स्वप्न में मैंने उत्तम बैल देखा है, जो कि अपने पद प्रहार से पृथ्वी को कँपा रहा है।

नाभिराज–स्वप्न में बैल के देखने से तुम्हारा पुत्र समस्त विश्व में श्रेष्ठ होगा।

मरुदेवी–तीसरे स्वप्न में मैंने पीली-पीली अयाल वाला उत्तम सिंह देखा है।

नाभिराज–देवि! स्वप्न में सिंह के देखने से तुम्हारा पुत्र अनंत बल से सहित होगा।

मरुदेवी–हे स्वामिन्! मैंने चौथे स्वप्न में लक्ष्मी को देखा है, जो कमल के आसन पर बैठी हैं और देवों के हाथी सुवर्ण कलशों से उसका अभिषेक कर रहे हैं।

नाभिराज–देवि! अभिषेक को प्राप्त होती हुई लक्ष्मी को देखने से वह पुत्र सुमेरु पर्वत के मस्तक पर देवों के द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा।

मरुदेवी–पाँचवें स्वप्न में बढ़िया, सुन्दर और सुगंधित फूलों की दो मालाएँ देखी हैं।

नाभिराज–हे देवि! स्वप्न में मालाओं के देखने से तुम्हारा पुत्र सच्चे धर्मतीर्थ का चलाने वाला होगा।

मरुदेवी–छठें स्वप्न में पूर्ण चन्द्रमा देखा है, जिसको चारों तरफ से तारा मंडल घेरे हुए हैं और जिसकी पूर्ण चाँदनी छिटक रही है।

नाभिराज–पूर्ण चन्द्रमा देखने से वह समस्त लोगों को परम आनन्द देने वाला होगा।

मरुदेवी–सातवें स्वप्न में उगता हुआ सूर्य देखा है।

नाभिराज–देवि! तुम्हारा पुत्र भी सूर्य के समान देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा।

मरुदेवी–स्वामिन्! आठवें स्वप्न में मैंने सुवर्ण के दो कलश देखे हैं जिन पर कमल रखे हुए हैं।

नाभिराज–प्रिये! दो कलशों के देखने से वह पुण्यरूप अनेक निधियों का स्वामी होगा।

मरुदेवी–नाथ! नवमें स्वप्न में मैंने कुमुद और कमलों से शोभायमान ऐसे तालाब में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखी हैं।

नाभिराज–देवि! मछलियों के देखने से सुख सरोवर में अवगाहन करने वाला होगा।

मरुदेवी–दशवें स्वप्न में सरोवर देखा है जिसके पानी के ऊपर कमलों की केसर फैल जाने से ऐसा लगता था मानों पिघला हुआ सुवर्ण ही चमक रहा हो।

नाभिराज–इस तालाब के देखने से वह महापुरुष अनेक लक्षणों से शोभित होगा।

मरुदेवी–ग्यारहवें स्वप्न में मुझे ऐसा विशाल समुद्र दिखा है कि जो उठती हुई लहरों से मानो अट्टहास कर रहा है।

नाभिराज–समुद्र के देखने से वह पुत्र अपने ज्ञान को पूर्ण कर केवल ज्ञानी बनेगा।

मरुदेवी–बारहवें स्वप्न में मुझे ऐसा स्वर्णमयी सिंहासन दिखा है कि जिसमें अनेक प्रकार के चमकीले मणि जड़े हुए हैं।

नाभिराज–इस दिव्य सिंहासन के देखने से वह जगत् का गुरु होकर साम्राज्य को प्राप्त करेगा।

मरुदेवी–तेरहवें स्वप्न में मैंने स्वर्ण का विमान देखा है जो कि बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नों से देदीप्यमान हो रहा है।

नाभिराज–देवविमान देखने से वह स्वर्ग से अवतीर्ण होगा।

मरुदेवी–चौदहवें स्वप्न में मुझे पृथ्वी को भेदन कर आता हुआ नागेन्द्र भवन दिखा है।

नाभिराज–हे सुमुखि! नागेद्र भवन के देखने से वह पुत्र अवधि-ज्ञानरूपी लोचनों से सहित होगा।

मरुदेवी–पंद्रहवें स्वप्न में मैंने रत्नों की राशि देखी है, जिसकी किरणों से आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा-सी बन गई थी।

नाभिराज–देवि! इन चमकते हुए रत्नों के ढेरे के देखने से वह पुत्र अनेक गुणरत्नों की खान होगा।

मरुदेवी–हे देव! सोलहवें स्वप्न में मैंने जलती हुई प्रकाशमान धूम रहित अग्नि देखी।

नाभिराज–प्रिये! इस निर्धूम अग्नि के देखने से तुम्हारा पुत्र कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा।

मरुदेवी–हे नाथ! इसके बाद मैंने देखा है कि सुवर्ण के समान पीली कांति का धारक एक ऊँचे कंधों वाला वृषभ मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है। इसका फल क्या है ?

नाभिराज–हे देवि! तुम्हारे मुख में जो वृषभ ने प्रवेश किया है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भ में तीर्थंकर ऋषभदेव अपना शरीर धारण करेंगे।

मरुदेवी–अहा! हर्ष से मेरा रोम पुलकित हो रहा है। ऐसा लगता है मानों मैंने तीर्थंकर पुत्र को आज ही प्राप्त कर लिया।

सखियाँ–हे जिनमातः! हे कल्याणि! आपकी जय हो, आप सदा वृद्धि को प्राप्त होओ...।

(इसी मध्य स्वर्ग से इन्द्र अनेक देव-देवियों के साथ प्रवेश करते हैं। जय-जय और बाजों की मंगलध्वनि होने लगती है। देवों सहित सौधर्म इन्द्र माता-पिता को नमस्कार करते हैं)।

इन्द्र–(हाथ जोड़कर) हे पूज्य! हे नाभिराज! आज हम लोग धन्य

हो गए हैं कि जो इस युग के अवतारी प्रथम तीर्थंकर के माता-पिता के दर्शन कर रहे हैं।

इन्द्राणी–मातः! आपके निर्मल गर्भ में तीर्थंकर ने अवतार ले लिया है। इसलिए आप आज त्रिभुवन के गुरु को गर्भ में धारण करने से त्रिभुवन में पूज्य हो गई हैं।

सभी देव-देवियाँ–(एक स्वर से) जय-जय पिता नाभिराज, जय-जय मरुदेवी माता। जय-जय भावी ऋषभनाथ सब जग में कीजे साता।

(इन्द्रादि माता-पिता को अनेक वस्त्राभरण आदि भेंट कर उनकी पूजा करके गीत, नृत्य आदि करते हैं। पुनः जय-जय बोलते हुए चले जाते हैं)।

पटाक्षेप

पंचम दृश्य

समय–प्रातः

स्थान–श्रीदेवी की सभा

(हिमवान पर्वत पर सरोवर में बहुत बड़ा कमल खिल रहा है, उसकी कर्णिका पर श्रीदेवी का भवन है। उसके सभागृह में श्रीदेवी बैठी हैं, अन्य देवियाँ भी हैं)।

(खड़ी होकर) अहो!!

श्रीदेवी–देवियों! आज हम सबके लिये महान् पुण्य का अवसर आया है। सौधर्म इन्द्र का आदेश आया है कि हम सभी को अयोध्या चलना है।

ह्री देवी–वहाँ जिन माता मरुदेवी की सेवा करके अपनी देवी पर्याय को सफल करना है।

धृति देवी–सच है, हम देवियों के सिवाय जिन माता की सेवा का पुण्य भला किसको मिल सकता है ?

कीर्ति–श्रीदेवी! अब देर किसलिये! आओ चलें।

(ये छहों देवियाँ अनेक परिवार देवियों के साथ वहाँ से चलकर अयोध्या में माता के महल में जय बोलते हुए प्रवेश करती हैं और पंचांग नमस्कार करती हैं)।

श्रीदेवी–माता जी प्रणाम।

माता–खुश रहो देवियों! आओ, आप सब कहाँ से आ रही हैं।

श्रीदेवी–मातः! हम सभी हिमवान, महाहिमवान आदि कुलाचलों के सरोवरों में कमलों पर निवास करती हैं। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये हम छहों के नाम हैं।

लक्ष्मीदेवी–मातः! सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से हम सब आप की परिचर्या के लिये यहाँ आई हुई हैं।

ह्री देवी–मातः! हम लोगों को आज्ञा दीजिये क्या करें।

माता–(हंसकर) देवियों ! बैठो, समय पर कार्य करना।

(देवियाँ स्वयं कुछ-न-कुछ कार्यों में लग जाती हैं) एक देवी माता को हार पहनाती है, दूसरी पैर दबाती है, तीसरी चंवर ढोरती है, चौथी और पाँचवीं देवी नृत्य करने लगती है, छठी देवी मंगल गीत प्रारंभ कर देती है–)

मंगलगीत

लक्ष्मी–हे मात तेरे गर्भ में तीर्थेश बस रहे।
हे मात तेरी अर्चना सुरेश कर रहे ॥
हे मात तेरी भक्ति से सब पाप धुल रहे।
हे मात कृपादृष्टि तेरी हम सभी चहें ॥

(एक देवी आँगन बुहारती है, दूसरी गीले कपड़े से जमीन पोंछती है, तीसरी चंदन घोल छिड़कती है, चौथी रंगचूर्ण से रंगावली बनाती है, पाँचवीं पुष्पों से पूजा करती है, छठी पुष्पगुच्छों को सजाकर उपहार भेंट करती है। कभी ये अलंकार पहनाती हैं, कभी वस्त्राभरण पहनाती हैं, कोई आरती उतारती है, कोई मंत्राक्षरों द्वारा रक्षाबंधन करती है, कोई नंगी तलवार

लेकर दरवाजे पर पहरा देती है)।

श्रीदेवी–मातः! आज वन क्रीड़ा के लिये चलना है।

(माता को आग्रह से उठाकर उद्यान की तरफ चली जाती हैं। वहाँ संगीत नृत्य का कार्य शुरू कर देती हैं। पुनः वापस आते समय माता के आगे मंगल द्रव्य लेकर चंवर ढोरते हुए आ रही हैं। एक देवी बार-बार माता की साड़ी को हाथ से उठाकर चलने लगती है। अनेक प्रकार से सेवा कर रही हैं। पुनः वापस आकर राजमहल में अपने आसन पर बैठ जाती हैं। देवियाँ अनेक प्रश्नोत्तर कर रही हैं)।

श्रीदेवी–हे मातः!

.....कः पञ्जरमध्यास्ते,.....कः परुषनिस्वनः।
.....कः प्रतिष्ठा जीवानं,.....कः पाठयोऽक्षरच्युतः॥

पिंजड़े में कौन रहता है? कठोर शब्द करने वाला कौन है? जीवों का आधार क्या है ? और अक्षरच्युत होने पर भी पढ़ने योग्य क्या है?

माता–देवियो सुनो–

शुकः पञ्जरमध्यास्ते, काकः परुषनिस्वनः।
लोकः प्रतिष्ठा जीवानां, श्लोकः पाठयोऽक्षरच्युतः॥

तोता पिंजड़े में रहता है, कौआ कठोर शब्द बोलता है, जीवों का आधार लोक है और अक्षरच्युत होने पर भी श्लोक पढ़ने योग्य है।

ह्री देवी–त्वत्तनौ काम्ब गंभीरा राज्ञो दोर्लंब आकुतः।
कीट्टक किं नु विगाढव्यं त्वं च श्लाघ्या कथं सती ॥

हे मातः! तुम्हारे शरीर में गंभीर क्या है? राजा नाभिराज की भुजायें कहाँ तक लंबी हैं ? कैसी और किस वस्तु में अवगाहना करनी चाहिये? और हे पतिव्रते! तुम अधिक प्रशंसनीय किसलिये हो ?

माता–"नाभिराजानुगाधिकं"। नाभिः, आजानु, गाधि-कं, नाभिराजानुगा अधिकं।

हमारे शरीर में गम्भीर नाभि है। महाराज नाभिराज की भुजायें

आजानुघुटनों तक लम्बी हैं। कुछ गहरे जल में अवगाहन करनी चाहिये और मैं नाभिराज की अनुगामिनी होने से अधिक प्रशंसनीय हूँ।

धृति–(आर्या छन्द में) मातः किमुपादेयं ?

माता–गुरु वचनं।

धृति–हेयमपि च किम्?

माता–अकार्यम्।

धृति–को गुरुः ?

माता–अधिगत तत्त्वः, सत्वहिताभ्युद्यतः सततम् ॥

धृति–हे मातः! इस संसार में ग्रहण करने योग्य क्या है ?

माता–गुरु के वचन। जो कि मोक्षमार्ग में लगाने वाले हैं।

धृति–और छोड़ने योग्य क्या है ?

माता–अकार्ययानी–पापादि निंद्य कार्य।

धृति–माता! गुरु कौन हैं ?

माता–जो तत्त्वों का स्वरूप जानते हैं और निरन्तर प्राणियों के कल्याण करने में तत्पर रहते हैं।

कीर्ति–किं पथ्यदनं ?

माता–धर्मः।

कीर्ति–कः शुचिः ?

माता–इह यस्य मानसं शुद्धम्।

कीर्ति–कः पण्डितो ?

माता–विवेकी।

कीर्ति–किं विषं ?

माता–अवधीरिता गुरवः।

कीर्ति–हे मातः! मार्ग के लिये नाश्ता क्या है ?

माता–धर्म है।

कीर्ति–संसार में शुद्ध कौन है ?

माता–जिसका मन पवित्र है।
कीर्ति–पंडित कौन है ?
माता–विवेकी पुरुष–जिसे अपने हित-अहित का ज्ञान है।
कीर्ति–विष क्या है ?
माता–गुरुओं का तिरस्कार और अपमान।
बुद्धि–का प्रेयसी विद्येया ?
माता–करुणा दाक्षिण्यमपि मैत्री।
बुद्धि–कोऽलंकारः
माता–शीलं।
बुद्धि–किं वाचां मंडनं!
माता–सत्यं।
बुद्धि–हे मातः! दान क्या है ?
माता–जिसे देकर बदले में कुछ न चाहा जाये।
बुद्धि–मित्र कौन है ?
माता–जो पापों से हटाता है।
बुद्धि–अलंकार क्या है ?
माता–शील ही परम भूषण है।
बुद्धि–और वाणी का भूषण क्या है ?
माता–सत्य है।
लक्ष्मी–कोदन्धो ?
माता–यो कार्यरतः।
लक्ष्मी–को बधिरो ?
माता–यः शृणोति न हितानि।
लक्ष्मी–को मूको ?
माता–यः काले प्रियाणि वदतुं न जानाति।
लक्ष्मी–हे मातः! अंधा कौन है ?

माता–जो निंद्यकार्यों में रत है।

लक्ष्मी–बहरा कौन है ?

माता–जो अपने हित की बात नहीं सुनता।

लक्ष्मी–और गूँगा कौन है ?

माता–जो समय पर मधुर वचन बोलना नहीं जानता।

श्रीदेवी–किं मरणं ?

माता–मूर्खत्वं।

श्रीदेवी–किं चानर्घ्यं ?

माता–यदवसरे दत्तं।

श्रीदेवी–आमरणात्किं शल्यं ?

माता–प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्य।

श्रीदेवी–हे मातः! मरण क्या है ?

माता–मूर्खता ही मरण है।

श्रीदेवी–अमूल्य वस्तु क्या है ?

माता–समय पर दिया गया दान अमूल्य है।

श्रीदेवी–और मरणपर्यंत जो काँटे की तरह चुभती रहे वह क्या है?

माता–गुप्त रीति से किया गया कुकर्म, यह जीवन भर हृदय में चुभता ता है।

ह्रीदेवी–कुत्र विधेयो यत्नो ?

माता–विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।

ह्रीदेवी–अवधीरणा क्व कार्या ?

माता–खलपरयोषित्परधनेषु।

ह्री देवी–हे मातः! यत्न कहाँ करना चाहिए ?

माता–विद्या अभ्यास करने में, अच्छी औषधि खोजने में और दान दा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

ह्री देवी–उपेक्षा कहाँ करनी चाहिये ?

माता–दुष्टजनों की, परस्त्री की और पराये धन की सदा उपेक्षा करनी चाहिए।

तुष्टिदेवी–कः पूज्यः?

माता–सद्वृत्तः।

तुष्टिदेवी–कमधनमाचक्षते ?

माता–चलितवृत्तम्।

तुष्टिदेवी–केनजितं जगमेतत् ?

माता–सत्यतितिक्षावता पुंसा।

तुष्टिदेवी–हे मातः पूज्य कौन है ?

माता–चरित्रवान् पुरुष।

तुष्टिदेवी–निर्धन किसे कहते हैं ?

माता–जो चारित्र से पतित हो गया है।

तुष्टिदेवी–और इस जगत् को किसने जीता है ?

माता–सत्य पथ पर अग्रसर सहनशील या क्षमाशील पुरुषों ने।

पुष्टिदेवी–काहर्निशमनुचिन्त्या ?

माता–संसारासारता न च प्रमदा।

पुष्टिदेवी–का प्रेयसी विधेया ?

माता–करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री।

पुष्टिदेवी–हे मातः! दिन रात किसका चिंतन करना चाहिये ?

माता–संसार की असारता का चिंतन करना चाहिये, न कि स्त्रियों का।

पुष्टि देवी–और प्रेमिका किसको बनाना चाहिये ?

माता–हे देवियों! पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे करुणा, चतुरता और मित्रता को प्रेमिका बनावें।

श्रीदेवी–चिंतामणिरिव दुर्लभमिह ननु ?

माता–कथयामि चतुर्भद्रम्।

श्रीदेवी–किंतत् ?

माता–वदामि देव्यो! निशृणुतैकाग्रचित्तेन। दान प्रियवाक्सहितं, ज्ञानमगर्व क्षमान्वितं शौर्यम्। त्यागसहितं च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥

श्रीदेवी–हे मातः! लोक में चिंतामणि के समान दुर्लभ क्या है ?

माता–चार भद्र ही अत्यंत दुर्लभ हैं।

श्रीदेवी–वे क्या हैं ?

माता–हे देवियो! मैं बताती हूं तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो–

एक तो, प्रियवचन सहित दान, दूसरा गर्व रहित ज्ञान, तीसरा क्षमा सहित शूरवीरता और चौथा दान सहित संपत्ति ये चार भद्र हैं–कल्याणकारी हैं, ये इस संसार में अतिदुर्लभ हैं।

ये इस भव और परभव दोनों में सुख तथा यश को देने वाली हैं (इस प्रकार नवमें महीने में देवियाँ माता से अनेक गूढ़ प्रश्नों को और तत्वचर्चाओं को करते हुए प्रसन्न करती रहती हैं)।

पटाक्षेप

छठा दृश्य

समय–उषा काल

स्थान–देव सभायें

(पृथक्-पृथक् चार सभायें बनी हैं। चार तरह की वेषभूषा में इंद्र सभायें लगी हैं। कल्पवासी देवों के यहाँ अपने आप घंटे बजने लगे, ज्योतिषी देवों के विमानों में सिंहनाद होने लगा, व्यंतर देवों के यहाँ भेरी वजने लगी और भवनवासी देवों के यहाँ शंख-ध्वनि होने लगी। इंद्रों के आसन कंपायमान हो गये, उनके मुकुट झुक गये और उनके कल्पवृक्षों से अपने आप फूल बरसने लगे)।

सौधर्म इंद्र–(चौंककर खड़े होकर) ऐ !! यह क्या ? यह क्या ? (कुछ सोचकर हर्ष ध्वनि से) ओहो! भगवान तीर्थंकर का जन्म हुआ है इसीलिए यह सूचनायें हुई हैं। (इन्द्राणी से) प्रिये! अयोध्या में माता मरुदेवी ने तीर्थंकर

पुत्र को जन्म दिया है।

इन्द्राणी–(पुलकित होकर) धन भाग्य हमारे, धन धन्य घड़ी शुभ आई। धनभाग्य हमारे।

(इन्द्र उसी दिशा में सात पैड चलकर तीर्थंकर को परोक्ष में नमस्कार करते हैं)

इन्द्र–देवों! ऐरावत हाथी को सुसज्जित करो और पूरी सेना तैयार कर लो। सोलहवें स्वर्ग तक सभी देवों को सूचना कर दो, अयोध्या नगरी चलना है। युगादि ब्रह्मा प्रथम तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाने के लिये।

सभी देव–(हर्ष से) जय हो, युगादि तीर्थंकर की जय हो।

(अनेक बाजे बजने लगते हैं, सभी देव-देवियाँ एकत्रित हो गये हैं, इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर अयोध्या आकर तीन प्रदक्षिणा देकर राजभवन में पहुँच जाते हैं और जय-जयकार के नारे से आकाश को गुँजायमान कर देते हैं)।

इन्द्र–हे शचि! महान् पुण्यशालिनी जिनेंद्रदेव के दर्शन का प्रथम लाभ आपको ही मिलेगा। आप माता के प्रसूतिगृह में जाकर जिन बालक का दर्शन कीजिये और उन्हें लाकर हमें दीजिये।

इन्द्राणी–(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा आपकी।

(इन्द्राणी माता के पास भक्ति से उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर माता की स्तुति करती है)

शची–हे मातः! तुम तीनों लोकों की कल्याण करने वाली माता हो, तुम्हीं मंगल करने वाली हो, तुम्हीं महादेवी हो, तुम्हीं पुण्यवती हो और तुम्हीं यशस्विनी हो।

(पुनः माता को मायामयी निद्रा से सुलाकर उनके पास दूसरा मायामयी बालक सुला देती है और आप स्वयं जिनशिशु को दोनों हाथों से उठाकर गोद में ले लेती है। इस समय उसे इतना हर्ष होता है कि मानों उसे तीनों लोकों का सब ऐश्वर्य ही मिल गया हो, वह बार-बार बालक

का मुख देखती है और शरीर का स्पर्श करती है। वह बालक को लेकर बाहर आती है। साथ में दिक्कुमारी देवियाँ हाथों में छत्र, ध्वज, कलश, चमर, सुप्रतिष्ठ, झारी, दर्पण और ताड़ का पंखा इन आठ मंगल द्रव्यों को लेकर भगवान् के आगे-आगे चल रही हैं, कोई देवियाँ मंगल हेतु मंगल-दीपक हाथ में लिए हैं। इन्द्राणी बाहर आकर इन्द्र के हाथों में जिन बालक को सौंप देती है। इन्द्र बालक को गोद में लेते ही गद्‌गद हो उनकी स्तुति करने लगता है)।

जयो जिनेश आपका अचिंत्य ये महात्म्य देख, भक्ति से समस्त देव आप-आप आ रहे । जयो जिनेश! आपका अपूर्व तेज देख के असंख्य सूर्य और चन्द्रमा भी लजाते रहे ॥

सौधर्म इन्द्र–हे भगवन्! आप तीनों जगत् की एक दिव्य-ज्योति हैं।

ईशान इन्द्र–हे देव! आप तीनों जगत् के एक गुरु हैं। हे नाथ! आप तीनों भुवन के एक विधाता हैं। हे त्रैलोक्य नाथ! आप तीनों जगत् के एक स्वामी हैं। हे देव! आप भव्य कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए एक अद्वितीय सूर्य हैं। इसलिए आपको नमस्कार हो, आप गुणों के समुद्र हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। हे प्रभु! आपसे ही हम लोगों को ज्ञान प्राप्त होगा, इसलिए आपको नमस्कार हो।

(इन्द्र भगवान को गोद में लिए हुए ही ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो जाता है। पुनः मेरुपर्वत की ओर चलने के लिए इशारा करता है। तत्क्षण ही ईशान इन्द्र प्रभु के ऊपर छत्र लगा लेता है। सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्र दोनों तरफ से चँवर ढोरने लगते हैं। किन्नर देव वीणा बजाते हैं। किन्नरियाँ नृत्य करने लगती हैं। सभी देव जय-जयकार के नारे से आकाश को मुखरित कर देते हैं। सभी बाजे एक साथ बजने लगते हैं। ये सभी देव अर्धनिमिष में एक लाख ऊँचे सुमेरुपर्वत पर पहुँच कर पहले उसकी प्रदक्षिणा देते हैं। पुनः ईशान दिशा की पांडुक शिला पर जिनशिशु को पूर्व दिशा में मुख करके विराजमान कर देते हैं। सभी देव-देवियाँ अपने स्थान

पर बैठ गये हैं। इन्द्र की आज्ञा से देवगण कतार बाँधकर क्षीर समुद्र से जल भर कर ला रहे हैं। १००८ कलश बहुत बड़े हैं। उनके कंठ में मोतियों की मालायें हैं, कलशों में चंदन लगा हुआ है और प्रत्येक कलश पर खिले हुए कमल रखे हुए हैं।)

इन्द्र मंत्र बोलकर कलश उठाता है, पुनः मंत्रोच्चारणपूर्वक प्रभु के मस्तक पर जलधारा छोड़ता है। साथ ही ईशान इंद्र दूसरा कलश लेता है। दोनों एक साथ अभिषेक करते हैं–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे अयोध्या–नगर्यां अवसर्पिण्यः तृतीयकालस्य अंतभागे मासोत्तममासे चैत्रमासे कृष्णपक्षे नवम्यां तिथौ युगादौ गृहीतजन्मनः प्रथमतीर्थंकरस्य अत्र सुदर्शनमेरुपर्वतस्य पांडुकशिलाया उपरि जन्माभिषेकं करिष्यामहे।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं ह्वीं ह्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झं क्ष्वीं ह्वीं हं सः त्रैलोक्येश्वर स्वामिनः क्षीरोदधिजलेन अभिषेचयामि स्वाहा।

(सभी बाजे एक साथ बजे रहे हैं, संगीत, गीत और नृत्य हो रहे हैं। जय-जयकार के नारे लग रहे हैं। तभी इन्द्रदेव क्रम-क्रम से अपनी-अपनी इन्द्राणियों-देवियों के साथ अभिषेक कर रहे हैं। अनन्तर इन्द्र सुगंधित जल से शान्तिधारा करता है। पुनः सभी देव मिलकर जिनदेव की प्रदक्षिणा देकर जल, चन्दन आदि से उनकी पूजा करते हैं। अनन्तर इन्द्राणी बालक के शरीर कोमल वस्त्र से पोंछ कर गोद में ले लेती है और वस्त्र, आभूषण पहनाती है। तिलक आदि लगाती है। कल्पवृक्ष के फूलों का मुकुट बाँधती है। मस्तक पर चूड़ामणि रत्न रखती है। कुण्डल, हार, बाजूबन्द, कड़ा, अगूँठी, करधनी आदि पहनाती है। उस समय इन्द्राणी के गोद में बैठे हुए बालक के रूप को इन्द्र हजार नेत्र बनाकर देखता है, पुनः हाथ जोड़कर स्तुति करता है)–

अहो भुवन के सूर्य! लोकालोक प्रकाशी,
अहो अखिल भुविचन्द्र! जन-मन कुमुद विकासी।
अहो त्रिजग के ईश! भविजन दुःख विनाशी,
अहो जगत पतिदेव, मुनिमन कमल विभासी ॥

सौधर्म इन्द्र–हे भगवन्! हम लोगों को परम आनन्द देने के लिए ही आप उदित हुए हैं। हे देव! आप देवों के आदि देव हैं, तीनों जगत के आदि गुरु हैं, इस युग के आदि विधाता हैं और धर्म के आदि नायक हैं।

सभी इन्द्र–हे त्रिभुवन गुरो! आप ही जगत् के एक पिता हैं और आप ही जगत् के रक्षक हैं। हे परमेश्वर! आप तीर्थंकर के अवतार हैं। अतः आप ही परम पवित्र हैं, क्योंकि आप ही जगत् को पवित्र करने वाले हैं। हे भगवान्! यद्यपि आप बिना स्नान के ही पवित्र हैं, तथापि जो मैंने मेरु पर्वत पर आपका अभिषेक किया है, वह पापों से मलिन हुए इस जगत् को पवित्र करने के लिए ही किया है। हे देव! आपके जन्माभिषेक से क्षीरसमुद्र तथा वहाँ के और यहाँ के वन-उपवन सभी पवित्र हो गये हैं। हे नाथ! यह आपका अभिषेक हम लोगों ने अपने मन को पूर्ण पवित्र बनाने के लिए ही किया है। हे भगवन्! आप बिना वस्त्र, बिना आभूषण और बिना शृंगार के ही सुगंधित शरीर हैं, सुन्दर शरीर हैं। हम लोगों ने तो केवल वस्त्र, आभूषण और सुगंधित लेपन से आपकी पूजा की है।

(पुनः इन्द्र तांडव नृत्य करता है, उसमें दश भवों को दिखलाता हुआ और वर्णन करता हुआ नृत्य करता है)

हे नाथ! भक्ति भाव से मैं शीश झुकाऊँ।
संगीत गीत नृत्य से मैं तुमको रिझाऊँ ॥
हे नाथ महाबल थे आज अतुल शक्तिधर।
ललितांग देव आज आप ललित देहधर ॥१॥

थे वज्रजंघ आज हैं जंघाये वज्रसम।
थे आर्य भोगभूमि के भी आज अर्यमन॥
श्रीधर थे आज लक्ष्मी के धारक महेश हो।
थे सुविधि आज श्रेष्ठ भाग्यशाली ईश हो ॥२॥
थे अच्युतेंद्र आप अविनश्वर जिनेश हो।
थे वज्रनाभि चक्रि धर्मचक्र ईश हो॥
सर्वार्थसिद्धि के हुए अहमिन्द्र आप ही।
इस दशवें भव में आप हुए ऋषभनाथ जी ॥३॥
इन दश प्रकार से लिए हैं आपने अवतार।
भवदधि से हम सभी को नाथ कीजियेगा पार॥
जय जय जिनेश आपकी पुरुदेव आपकी।
जय जय अहो! त्रैलोक्य के गुरुदेव आपकी ॥४॥

(इन्द्र भगवान् का 'ऋषभदेव' नाम रखकर तीन बार सबसे जय बुलवाता है)।

इन्द्र–हे देवों! ये प्रथम तीर्थङ्कर युग की आदि में होने से युगादि पुरुष हैं, आदि ब्रह्मा हैं और आदिनाथ हैं। यद्यपि इनके ऐसे अनेक नाम लिये जायेंगे फिर भी मैं आज इनका 'ऋषभदेव' यह नामकरण करता हूँ। और दूसरा 'पुरुदेव' यह नाम रखता हूँ। बोलिए प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव भगवान् की जय। पुरुदेव भगवान् की जय, आदिनाथ भगवान् की जय।

(पुनः इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठकर पूर्ववत् गाजे-बाजे के साथ अयोध्या आकर माता के आँगन में भगवान् को ऊँचे सिंहासन पर विराजमान कर देते हैं। पिता बालक को देखते ही हर्ष से विभोर हो जाते हैं, इन्द्राणी प्रसूति गृह से माता को ले आती है। इन्द्र देवों के साथ माता-पिता की पूजा करके अनेक दिव्य वस्त्राभूषण भेंट करके पुनः उन दोनों की स्तुति करते हैं)।

इन्द्र–हे पूज्य! हे मातः ! हे पितः ! आप दम्पत्ति महापुण्यशाली हैं।

आप जगत् के गुरु को जन्म देने से जगद्गुरु के भी गुरु हैं। माता-पिता हैं। हे नाभिराज! आप उदयाचल पर्वत हैं। हे मातः! आप पूर्व दिशा हैं क्योंकि यह पुत्ररूपी दिव्यज्योति आपसे ही उत्पन्न हुई है।

ईशान इन्द्र–आपका यह महल हम लोगों के लिए जिन मन्दिर के समान पूज्य है और आप दोनों जगत्पिता के भी माता-पिता हैं इसलिए सदा ही हम लोगों के लिए पूज्य हैं।

(इन्द्र तांडव नृत्य प्रारम्भ करता है, तब पहले रंगभूमि में पुष्पांजलि बिखेरता है। संगीत, ताल, वाद्य बजने लगते हैं। पुनः नृत्यादि करके वह इन्द्र जिन बालक को माता की गोद में सौंप देता है। और आज्ञा लेकर अपने स्थान पर चला जाता है। इधर अयोध्या के अगणित नर-नारी वहाँ इकट्ठे हो गये हैं। गीत, नृत्य, वाद्यों का कार्यक्रम चल रहा है। राजा नाभिराज किमिच्छक दान बाँट रहे हैं)।

पटाक्षेप

सप्तम दृश्य

समय–मध्याह्न

स्थान–माता का आँगन

(मणियों से बने पालने में ऋषभकुमार बैठे हुए हैं। देवांगनायें धाय के रूप में पालना झुला रही हैं और मंगलगीत गा रही हैं। अनेक नर-नारी आकर पालना झुलाते हैं। भेंट देते हैं, गीत गाते, नृत्य करते हैं और नमस्कार कर-करके चले जाते हैं। आने वालों का तांता लगा हुआ है)।

देवांगना– मणियों के पालने में पुरुदेव को झुलायें।
श्री नाभिराज नंदन, मरुदेवी के दुलारे।
इंद्रादि करें वंदन, त्रिभुवन गुरु हमारे॥
हम पालना झुलायें, भव दुःख को भुलायें।
मणियों के पालने में, पुरुदेव को झुलायें ॥१॥

सब जग के एक स्वामी, भवरोग हरण नामी।
मति श्रुत अवधि के ज्ञानी, सब शास्त्र पारगामी।
गुरुओं के ये गुरु हैं, सब मिल इन्हें रिझायें॥
मणियों के पालने में॥२॥

(अनंतर कोई देवी बालक को गोद में लेकर खिलाती है, कोई माता की गोद में दे देती है, कोई पुनः बालक को हँसाती है, कोई शरीर पर हाथ फिराती है। कोई बालक को गोद में लेकर नाचती है, कोई गाती है)।

देवी नं १–मातः! आपने इस जगत् के सूर्य को जन्म दिया है, आप इस नारी सृष्टि में चूड़ामणि रत्न के समान हैं।

देवी नं० २–हे मातः ! आपके पुत्र के जन्म से ही दस अतिशय देखे गये हैं।

१. इनका रूप तीन लोक में सबसे अधिक सुन्दर है, २. पसीना से रहित है, ३. मल-मूत्र आदि से रहित है।

देवी नं० ३-४–इनके शरीर में रुधिर दूध के समान श्वेत है, ५. इनका समचतुरस्रनामक उत्तम संस्थान है, ६. वज्रवृषभनाराच नाम का उत्तम संहनन है, ७. इनके शरीर की सुगंधि परम सीमा को प्राप्त है। ऐसी सुगंधि तीन लोक में अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

देवी नं० ४-८–इनके शरीर में १००८ शुभ लक्षण हैं। ९. इनके शरीर में अप्रमेय अतुल्य बल है। और १०. इनके वचन प्रिय तथा हितकारी हैं। ये दस विशेषतायें इन पुण्य पुरुष ऋषभदेव में जन्म से ही मौजूद हैं।

देवांगना–इनके श्रीवत्स से चिह्नित वक्ष-स्थल पर १००८ लड़ियों वाला यह 'इन्द्रच्छद' नाम का दिव्यहार कितना सुन्दर दिख रहा है।

(इसी मध्य एक देवी बालक के गाल पर जरा-सा काजल लगा देती है। दूसरी देवी नजर उतारने के लिए आरती उतारती है। देवियाँ बालक की अंगुली पकड़ कर चलाती हैं। पुनः सहसा छोड़ती हैं, तभी वह बालक रूप भगवान लड़खड़ाते हुए माता की गोद में आ जाते हैं। ऐसी बाल-क्रीड़ाओं से वे सबका मन खुश कर रहे हैं)।

पटाक्षेप

अष्टम दृश्य

समय–सायंकाल

स्थान–अयोध्या का उद्यान

(ऋषभदेव अनेक देवों के साथ वन क्रीड़ा कर रहे हैं। वे देव ऋषभदेव के समान किशोरावस्था के रूप को धारण कर उनके साथ खेल रहे हैं। उसी समय एक देव ने मयूर का रूप बना लिया, भगवान उस लय के अनुसार हाथ की ताल देकर नृत्य करा रहे हैं। एक देव ने तोते का रूप धरा तो भगवान् उसे पढ़ा रहे हैं।

ऋषभदेव–(तोते से) तोते! पढ़ो सिद्धाय नमः।

तोता–सिद्धाय नमः, सिद्धाय नमः।

देवकुमार नं० १–बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्
त्वं शंकरोऽपि भुवनत्रयशंकरत्वात्।

देवकुमार नं० २–धातासि धीर! शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥

देवकुमार नं० ३–हे प्रभो! त्वं त्रैलोक्येश्वरः, धर्मस्य तीर्थकर्ता, त्वमेव अज्ञानतमसा अन्धानां प्राणिनां सत्पथदर्शकः त्वं जय, जय वर्धस्व, वर्धस्व, विजयस्व विजयस्व।

देवकुमार नं० ४–हे देवाधिदेव! बिना गुरु के पढ़ाये ही सर्व विद्याओं के स्वामी!

देवकुमार नं० ५–भगवन्! सरस्वती और लक्ष्मी सदा ही आपके चरणों की सेवा करती हैं।

देवकुमार नं० १–हम सभी देव भी आपके साथ क्रीड़ा करके अपने देव पर्याय को धन्य मान रहे हैं।

देवकुमार–(आर्य छंद में) भगवन् किमिहाराध्यं ?

भगवान्.....रत्नत्रयतेजसा प्रतपभानम्।

शुद्धं निजात्मतत्त्वं जिनरूपं सिद्धचक्रम् च ॥

देवकुमार नं०१–हे भगवन् ! इस संसार में आराधना करने योग्य क्या है ?

भगवान्–रत्नत्रय के तेज से स्फुरायमान शुद्ध आत्म तत्त्व, जिनेन्द्र भगवान् का स्वरूप और सिद्ध भगवान्। ये तीनों ही आराधना करने योग्य हैं।

देवकुमार नं० २–को देवो ?

भगवान्–निखिलज्ञो निर्दोषः।

देवकुमार–किं श्रुतं ?

भगवान्–तदुद्दिष्टं।

देवकुमार–को गुरुः ?

भगवान्–अविषयवृत्तिः निर्ग्रन्थः स्व स्वरूपस्थः।

देवकुमार–हे भगवन्! देव कौन है ?

भगवान्–जो अखिल पदार्थों के ज्ञाता सर्वज्ञ हैं और अठारह दोषों से रहित वीतराग हैं।

देवकुमार–शास्त्र क्या है ?

भगवान्–उन्हीं सच्चे देव के द्वारा कथित वचन ही शास्त्र हैं।

देवकुमार–गुरु कौन है ?

भगवान्–जिनके विषयों में प्रवृत्ति नहीं है, जो निर्ग्रंथ दिगम्बर हैं और सदा अपने आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं।

देवकुमार–किं दुर्लभं ?

भगवान्–नृजन्म।

देवकुमार–प्राप्येदं भवति किं कर्तव्यम् ?

भगवान्–आत्महितमहितसंगत्यागो रागश्च गुरुवचने।

देवकुमार–हे भगवन्! दुर्लभ क्या है ?

भगवान्–मनुष्य जन्म पाना।

देवकुमार–उसे प्राप्त करके क्या करना चाहियें ?

भगवान्–आत्मा का हित करना, अहितकर संगति का त्याग करना, और गुरु वचनों में अनुराग करना, ये तीन कार्य करने चाहियें।

(सभी देव बालकों के साथ घर आ जाते हैं। माता के आँगन में ऊँचे आसन पर बैठे हैं। इन्द्र ने भोजन, वस्त्र, अलंकार सामग्री भेजी है। देवगण भगवान् को नमस्कार करके माता को नमस्कार करते हैं। पुनः सब सामग्री दे देते हैं)।

माता–हे वत्स तीर्थेश्वर ! स्नानादि से निवृत्त होओ, भोजन करो। देखो, इन्द्र ने स्वर्ग से ये सब स्नान, उबटन, लेपन की सामग्री भेजी है। ये वस्त्र अलंकार हैं। यह भोजन सामग्री है।

ऋषभदेव–अच्छा, मातः! जैसा आप कहती हैं वैसा ही करुँगा। (स्नानादि से निवृत्त होते हैं। देव बालक मुकुट आदि पहनाते हैं। पुनः भोजन आदि से निवृत्त हो उच्च आसन पर बैठ जाते हैं। अनन्तर अलंकार, व्याकरण, काव्य, छंद, गणित आदि की चर्चाएँ चालू हो जाती हैं)।

देवकुमार–प्रभो ! "नाभेय" शब्द कैसा बनेगा और उसका क्या अर्थ है?

ऋषभदेव–यह व्याकरण में तद्धित प्रत्यय से बनता है। नाभेः अपत्यं है। नाभि ङ, स् प्रत्यय का लोप होकर तद्धित का एषण प्रत्यय होकर "नाभेयः" बना है, जिसका अर्थ है नाभिराजा के पुत्र सो 'मैं' हूँ।

दूसरा देवकुमार–प्रभो! भगवान् शब्द कैसे बनेगा!

ऋषभदेव–भगो अस्य अस्तीति भगवान्, इसमें मतुप् प्रत्यय होकर 'सि' विभक्ति में बनेगा। भग अर्थात् पुण्य जिनके हैं वे भगवान् हैं।

तीसरा देवकुमार–प्रभो! 'भवतु' यह क्रिया कौन-से लकार में है ?

ऋषभदेव–यह लोट् लकार है।

प्रथम देव–भगवन्! मुक्ति वाचक कुछ नाम बता दीजिये ?

ऋषभदेव–मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, श्रेयो, निःश्रेयस, अमृत, मोक्ष और

अपवर्ग ये मुक्ति के नाम हैं। हम सभी को इसे ही प्राप्त करना है।

द्वितीय देव–नाथ ! जिसने आपके गर्भ में आने के छह महीने पहले से ही रत्नों की वर्षा की थी। उसके कुछेक नाम जानना चाहता हूं।

ऋषभदेव–कुबेर, त्रयंबसख, यक्षराट्, गुह्यकेश्वर, मनुष्यधर्मा, धनद् रामराज, धनाधिप, किंनरेश, वैश्रवण, पौलस्त्य, नरवाहन, यक्षैक, पिंगल, ऐलविल, श्रीद, और पुण्यजनेश्वर ये कुबेर के नाम हैं। ये ही रत्न वर्षा करता है।

द्वितीय देव–प्रभो! मुझे स्रग्विणी छन्द का लक्षण समझाइये।

ऋषभदेव–रेश्चतुर्भिर्युता स्रग्विणी समता। जिसमें चार रगण हों वह स्रग्विणी छन्द है।

तृतीय देव–मुझे पृथ्वी छन्द का लक्षण आपके श्रीमुख से सुनना है।

ऋषभदेव–जसौ जसयला वसुग्रह्यतिश्च पृथ्वी गुरु। जगण सगण जगण सगण यगण एक लघु और एक गुरु जिस छन्द में पाये जाये वह पृथ्वी छन्द है। इसमें आठ वर्ण के बाद और नव वर्ण के बाद में यति होती है। यथा–

न हस्तसुलभे फले, सति तरुः समारुह्यते।

प्रथमदेव–प्रभो! मैं अलंकार के भेद आपसे समझना चाहता हूं।

ऋषभदेव–अलंकार के मूल में दो भेद हैं–शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दालंकार के चित्रालंकार, वक्रोक्ति अलंकार, अनुप्रास अलंकार और यमकालंकार। अर्थालंकार के जाति, उपमा, रूपक, प्रतिवस्तूपमा, भ्रान्तिमान् आदि पैंतीस भेद हैं।

प्रथम देव–प्रभो ! "यशस्ते समुद्रान्सदारोरगारेः। सदा रोरगारेः समानांगकांतेः॥ इस पद्य में कौन-सा अलंकार है और इसका क्या अर्थ है ?

ऋषभदेव–यह मध्यपाद यमक अलंकार है, सोमराजी छंद है। और इसका सुनो, गरुड़ के समान स्वर्णवर्ण की कांति वाले एवं शुत्रओं को दरिद्र

करने वाले आपका सुयश समुद्र तक गमन करने वाला है।

द्वितीय देव–भगवन्! काव्य के गुण-दोष कितने हैं ?

ऋषभदेव–सुनो! काव्य के उदारता, समता, कांति, अर्थ-व्यक्ति, प्रसन्नता, समाधि, श्लेष, ओज, माधुर्य और सुकुमारता ये दश गुण हैं तथा अनर्थक, श्रुतिकटु, व्याहतार्थ, अलक्षण, अप्रसिद्ध आदि दोष हैं।

एक देव–भगवन्! गणित विज्ञान के मूल में कितने भेद हैं ?

ऋषभदेव–आठ भेद हैं–गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, चितिंया संकलित और व्युत्कलित अर्थात् शेष।

द्वितीय देव–विभो! घन का लक्षण मैं आपके श्रीमुख से समझना चाहता हूं।

ऋषभदेव–किसी संख्या को तीन बार परस्पर में गुणित कर देना घन है। जैसे ३ × ३ × ३ = २७ है।

तृतीय देव–नाथ! यह लोक कितने घनराजु प्रमाण है ?

ऋषभदेव–यह तीन सौ तेंतालीस (३४३) घनराजु प्रमाण है।

प्रथम देव–भगवन्! इस मध्यलोक में कितने द्वीपसमुद्र हैं ?

ऋषभदेव–पचीस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों में जितने रोम खण्ड होते हैं उतने ही द्वीप समुद्र हैं। अर्थात् जंबूद्वीप, लवण समुद्र, घातकी खण्ड, कालोदधि, पुष्करद्वीप, पुष्कर समुद्र आदि असंख्यात् द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं।

प्रथम देव–प्रभो ! आप जन्म से ही अवधिज्ञानी हैं और गुरुओं के गुरु हैं। अतः बिना पढ़े ही सारी विद्यायें आप में प्रगट हैं, आप की महिमा अचिन्त्य है।

द्वितीय देव–भगवन् ! यही कारण है कि स्वर्ग का सबसे बड़ा सौधर्म इन्द्र भी सदा आपका किंकर बना हुआ है।

तृतीय देव–हे तीन लोक के नाथ! उस इन्द्रराज की आज्ञा से ही हम देव लोग आपकी सेवा के लिए यहाँ आये हुए हैं। हम सभी आपके

साथ रहकर स्वर्ग से भी अधिक गौरव का और सुख का अनुभव कर रहे हैं।

सभी देव–भगवन्! हम लोग बहुत पुण्यशाली हैं और आगे के लिए सातिशय पुण्य का संचय कर रहे हैं। सचमुच में आपकी भक्ति संसार का अंत करने वाली है।

पटाक्षेप

[प्रथम अंक समाप्त]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

समय–मध्याह्न

स्थान–राजसभा

(राजा नाभिराज सिंहासन पर आरूढ़ हैं। सहसा कुछ विचार आते ही खड़े होकर सोच रहे हैं)।

नाभिराज–(स्वगत) ये ऋषभदेव अतिशय सुन्दर शरीर के धारक हैं। इनके चित्त को हरण करने वाली कौन-सी स्त्री हो सकती है? सुंदर कन्या तो मिल जायेगी, किन्तु इनका विवाह कराना कठिन ही कार्य है। इनका विषयराग अत्यंत मंद है। दूसरी बात यह है कि ये धर्मतीर्थ को चलायेंगे। नियम से सर्व परिग्रह छोड़कर वन को चले जायेंगे। फिर भी इनके लिए लोक-व्यवहार के अनुरोध से किसी योग्य कन्या का विचार करना चाहिए। (मंत्रियों से)–

मंत्रियो! हमें ऋषभदेव के पास चलना है।

मंत्री–चलिए महाराज!

नाभिराज ऋषभदेव के निकट पहुँचते हैं। वे आसन पर बैठे थे, उठकर खड़े हो जाते हैं। पुनः दोनों यथायोग्य आसन पर बैठ जाते हैं। सिंहासन आजू-बाजू एक समान रक्खे हैं)।

नाभिराज–हे देव! मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। आप "स्वयंभु" हैं–स्वयं ही उत्पन्न हुए हैं। हम तो आपकी उत्पत्ति में केवल एक निमित्त मात्र हैं। जैसे कि सूर्य स्वयं उदित होता है, उदयाचल उसमें केवल निमित्त मात्र है। अतः यद्यपि मैं वास्तव में आपका पिता नहीं हूँ, निमित्त मात्र से ही पिता हूँ। फिर भी मैं आपसे एक अभ्यर्थना करता हूँ।

देव! आप इस संसार की सृष्टि की ओर अपनी बुद्धि कीजिए। और किसी इष्ट कन्या के साथ विवाह कीजिये। यह विवाह कार्य गृहस्थों का एक धर्म है। यदि आप मुझे किसी तरह भी गुरु या बड़ा मानते हैं तो आपको मेरे वचन उल्लंघन नहीं करने चाहिये।

(इतना कहकर नाभिराज चुप हो गये, तब ऋषभदेव बोले।)

ऋषभदेव–(मुस्कुराते हुए) ओम्।

(उसी समय सौधर्म इंद्र आ जाता है। भगवान् को नमस्कार कर पिता को प्रणाम करता है। यथोचित् आसन पर बैठकर कहता है।)

इंद्र–अहो! जितेंद्रिय प्रभु ने जो विवाह कराने की स्वीकृति दे दी है वह आपके वचनों की चतुराई है, अथवा इन्हें प्रजा के उपकार करने की इच्छा है या ऐसा ही कोई कर्मों का नियोग है...ऐसा समझता हूँ।

नाभिराज–हाँ, इंद्रराज! अब आप बताइये इनके लिए इस भरतक्षेत्र में कौन-सी कन्या योग्य है ?

इंद्र–तात! मैंने सोच लिया है, कच्छ, महाकच्छ राजाओं की बहनें यशस्वती और सुनंदा इन प्रभु के लिए सर्वथा योग्य हैं।

(उन दोनों राजाओं को महाराज नाभिराज की सूचना पहुँचते ही वे हर्ष से विभोर हुए अपनी बहनों को साथ लेकर वहाँ आ गये। इन्द्र की

आज्ञा से देवों ने वहुत ही सुन्दर विवाह मंडप बना दिया है। माता मरुदेवी और इन्द्राणी मंगलाचार में तत्पर हैं। सारी अयोध्या स्वर्गपुरी सदृश तोरण, पताका, फूलमाल आदि से सजाई गई है। देवांगनायें मंगल गीत, संगीत और नृत्य कर रही हैं। प्रजा की भीड़ उमड़ पड़ी है। उस मंडप में स्वर्ग के वस्त्र आभूषणों से सजाई कन्याओं को कच्छ, महाकच्छ संकल्पमंत्र बोल कर ऋषभदेव के लिए समर्पित कर रहे हैं)।

कच्छ, महाकच्छ–"अथ आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे अस्यां अयोध्यानगर्यां अद्य मंगलमुहूर्ते चतुर्दशम कुलकर नाभिराजस्य पुत्राय युगादिपुरुषाय प्रथमतीर्थंकराय श्रीऋषभदेवाय यशस्वतीं सुनन्दां च भगिनीं आवाम् समर्पयावः।"

(पुनः पुरोहित भी मंत्रोच्चारण करते हुए दोनों कन्याओं से ऋषभदेव के गले में वरमाला पहनवाते हैं)।

पुरोहित–(उच्च स्वर से) ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नाभिराजपुत्राय श्री ऋषभदेवाय मंगलं भूयात्। जयतु जयतु देवः नंदतु वर्धताम्, विजयताम्।

ज्योतिर्व्यंतर भावनामरगृहे मेरो कुलाद्रौ तथा,
जंबूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्यादिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नंदीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वंतु वः मंगलम्॥

(पुरोहित ऋषभदेव, यशस्वती, सुनंदा के मस्तक पर पुष्पांजलि क्षेपण कर देते हैं। अनेक बाजे बज रहे हैं। इंद्र प्रभु का विवाह सम्पन्न कराके स्तुति करता है)।

इन्द्र–हे नाथ! यह आपका विवाह महोत्सव इस मनुष्य लोक के लिए ही नहीं, हमारे स्वर्ग में भी सभी को बहुत भारी प्रीति उत्पन्न कर रहा है। जगत् की सृष्टि को चलाने के लिए यह आपका कार्य अत्युत्तम है। गृहस्थाश्रम को चलाने के लिए यह परमधर्म है। इसलिए यह मोक्षमार्ग के लिए कारण है, क्योंकि विवाह विधि से गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर गृहस्थ

दम्पत्ति ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, चरमशरीरी आदि महापुरुषों को जन्म देंगे और गृहस्थ ही दान पूजा के द्वारा श्रावक धर्म का पालन करेंगे।

शची–माता मरुदेवी की पुत्रवधु यशस्वती और सुनंदा का सौभाग्य अखण्ड हो। इन दोनों के समान इस मध्यलोक में भला किसका पुण्य है कि जो तीर्थंकर देव की अर्धाङ्गिनी बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सके।

(अनंतर भगवान् और नाभिराज की आज्ञा लेकर इंद्र अपने स्थान को चले जाते हैं। श्रीऋषभदेव और उनकी रानियों के दर्शन का भेंट चढ़ाने का प्रजाजनों का तांता लग गया है। सर्वत्र जय जयकार हो रही है।)

सभी प्रजा–तीर्थंकर ऋषभदेव की जय हो, रानी यशस्वती सुनंदा की जय हो। महाराजा नाभिराज की जय हो, माता मरुदेवी की जय हो।

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

समय–प्रातः काल

स्थान–राजसभा

(तीर्थंकर ऋषभदेव सिंहासन पर विराजमान हैं। रानी यशस्वती सखियों के साथ आकर भगवान् को नमस्कार कर यथोचित् आसन पर बैठ जाती हैं)।

यशस्वती–(विनीत मुद्रा से हाथ जोड़कर) हे स्वामिन्! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने उत्तम-उत्तम पाँच स्वप्न देखे हैं। ग्रसी हुई पृथ्वी, सुदर्शन मेरु पर्वत, समुद्र, सूर्य-चंद्रमा और हंसों की क्रीड़ा से युक्त सरोवर। हे देव! इन स्वप्नों का फल मैं आपके मुखारविंद से सुनकर अपनी जिज्ञासा को पूर्ण करना चाहती हूँ।

ऋषभदेव–(दिव्य अवधिज्ञान से जानकर) हे देवि! स्वप्नों में जो तुमने सुमेरु पर्वत देखा हैं उसका फल यह है कि तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा। पृथ्वी का ग्रसा जाना देखने से वह षट्खंड पृथ्वी को जीतकर उसका पालन

करेगा।

हे कमलनयने! स्वप्न में देखा गया सूर्य उसके प्रताप को और चन्द्रमा उसकी कांति रूपी संपदा को बतला रहा है। हंसों से युक्त सरोवर के देखने से तुम्हारा पुत्र अनेक पवित्र लक्षणों से चिन्हित शरीर होकर अपने विस्तृत वक्ष-स्थल पर कमलवासिनी लक्ष्मी को धारण करने वाला होगा, और हे कल्याणि! समुद्र को देखने से वह चरमशरीरी होकर संसार समुद्र को पार करने वाला होगा। इसके सिवाय इक्ष्वाकुवंश को आनन्द देने वाला वह पुत्र तुम्हारे सौ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ होगा।

यशवस्वती–(स्वगत) हर्ष, अतिहर्ष।

पुनः पतिदेव की आज्ञा लेकर उन्हें पुनः पुनः नमस्कार कर अपने महल में वापस आ जाती हैं।

(घर में गर्भवती यशस्वती तलवाररूपी दर्पण में अपने मुख की कांति देख रही हैं। तब मरुदेवी कहती हैं)।

मरुदेवी–(स्वगत) मुस्कुराकर मेरी प्यारी पुत्रवधू यशस्वती तलवार में मुख देख रही है। इसका पुत्र संपूर्ण शत्रुओं को जीतकर सार्वभौम शासन करेगा। यही इसका फल दीख रहा है।

परिचारिका–मातः! जब देखो तब ये महादेवी तलवार में अपना मुख देखती हैं। और तो क्या ये दर्पण में अपनी छाया देखकर उसे भी प्रतिकूल समझ कर सहन नहीं कर सकती हैं।

परिचारिका नं० २–मातः! जिनके गर्भ में रत्न भरे हुये हैं ऐसी ये गर्भवती देवी यशस्वती महान् तेज की राशि हैं।

परिचारिका नं० १–मातः! इनके गर्भ के बढ़ने पर भी इनकी उदर की त्रिबली भंग नहीं हुई है।

मरुदेवी–(हँसकर) हाँ, इसका पुत्र भंगरहित-अभंग दिग्विजय प्राप्त करेगा, इसमें क्या संदेह है।

(कुछ क्षण बाद महाराज नाभिराज पौत्ररत्न की खुशी में किमिच्छक

दान बाँट रहे हैं। बाजे बज रहे हैं। राजांगण में मंगलगीत, नृत्य आदि हो रहे हैं। घर-घर में बधाई के गीत गाये जा रहे हैं। अयोध्या में सर्वत्र मंगलाचार हो रहा है)।

बधाई गीत–

आवो री सखी सब मिलकर मंगल गावो री।
प्रभुजी के आँगन में खुशियाँ मनावो री ॥ आवो री० ॥
यशस्वती माता ने लाल जन्यो है।
मरुदेवी के मन आनन्द घनो है ॥
सुन्दर सलोने मुख की, नजर न लगावो री ॥ आवो री० ॥
धन्य धन्य आज का दिन भरत राज जन्म लिया।
प्रथम तीर्थंकर का पुत्र प्रथम चक्रवर्ती हुआ ॥
गावो री बधाई मंगलाचार भी मनावो री ॥ आवो री० ॥

राजांगण में पुरोहित जी पंचांग देख रहे हैं। पुनः नाभिराज से कहते हैं–

पुरोहित–हे राजाधिराज! आज चैत्र कृष्ण नवमी है, मीन लग्न है, ब्रह्मयोग है, धनराशि का चंद्रमा है और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र है। भगवान् ऋषभदेव के जन्म के समय ये ही सब उत्तम-उत्तम योग और नक्षत्र आदि थे, वे ही इस समय हैं। इस उत्तम मुहूर्त में जन्मा यह शिशु अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी का आलिंगन कर उत्पन्न हुआ है। इससे यह प्रगटहोता है कि "यह समस्त पृथ्वी का उपभोक्ता चक्रवर्ती होगा।"

नाभिराज–(प्रसन्न होकर) हे पुरोहित! आपने परम आनन्द की बात कही है। अच्छा, लो यह दक्षिणा। (रत्नों के हार आदि उतार कर देदेते हैं)।

मरुदेवी–हे देवि! हे यशस्वती! शतपुत्रा भव। तू ऐसे ही सौ पुत्रों को उत्पन्न कर।

देवियाँ–हे तीर्थंकर के सुपुत्र! तुम चिरंजीव रहो, करोड़ों मंगल क

प्राप्त करो।

(सब प्रजा के लोग जय-जयकार कर रहे हैं)–

महाराजा नाभिराज की जय हो, महारानी मरुदेवी की जय हो। तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की जय हो, महादेवी यशस्वती की जय हो, सुनंदा की जय हो। चक्रवर्ती पुत्र भरत सम्राट की जय हो।

(तीर्थंकर ऋषभदेव स्वयं अपने हाथ से रत्न बाँट रहे हैं)।

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

समय–सायंकाल।

स्थान–राजमहल के निकट बगीचा।

(बहुत बालक गेंद खेल रहे हैं, दो छोटी बालिकायें भी खेल रही हैं। इसमें दो भाई कुछ बड़े हैं शेष छोटे-छोटे हैं। पास दो गाय खड़ी हैं। कभी ये बालक झूला झूलते हैं। ब्राह्मी-सुंदरी फूल तोड़ रही हैं)।

भरत–बाहुबली! आओ अब गोली खेलें।

बाहुबली–हाँ, भइया! लो ये गोलियाँ हैं।

(सब गोलियाँ खेलने लगते हैं)

ब्राह्मी–(फूल का छोटा-सा मुकुट लेकर भरत से) भय्या भरत! तुम बड़े होकर चक्रवर्ती बनोगे। लो मैं तुम्हारे यह चक्रवर्ती का मुकुट बाँध दूँ। (मुकुट बाँध देती है)।

सुंदरी–(ब्राह्मी से) जीजी! मैं तुम्हारी चोटी में फूल गूँथूंगी!

(चोटी में फूल लगाती है)

(कुछ देर बाद ये बालक वापस आकर राजदरबार में प्रवेश करते हैं। पिता और बाबा को प्रणाम करते हैं। तीर्थंकर ऋषभदेव भरत–बाहुबली को प्यार से उठाकर गोद में बिठा लेते हैं। पुत्रियाँ नाभिराज की गोद में बैठ जाती हैं। पुत्र-पिता में कुछ चर्चायें शुरू हो जाती हैं)।

ऋषभदेव–(भरत से) (प्यार से)–बेटा! तेरा फूलों का मुकुट बहुत सुंदर दिख रहा है।

बाहुबली–(जल्दी से) पिताजी! ब्राह्मी ने भइया को "आगे ये सम्राट बनेंगे" इस उपलक्ष्य में यह मुकुट पहनाया है।"

ऋषभदेव–(हँसकर) अच्छा, जब तू चक्रवर्ती बनेगा तो मुझे भेंट में क्या देगा ?

भरत–पिताजी ! आप तो तीन लोक के स्वामी हैं। सौधर्म इंद्र भी आपका किंकर है। तो फिर छह खंड का विजय और चक्रवर्ती की संपत्ति आपके आगे क्या हैं ? मैं तो सदा आपके श्री चरणों की रज से ही अपने मस्तक को पवित्र करता रहूँगा।

वृषभसेन–भइया ! तो क्या आप रत्नों के थाल से पिताजी की पूजा नहीं करेंगे ?

बाहुबली–वह पूजा तो केवली अर्हंत भगवान् की करेंगे। पिताजी के लिये वह भेंट थोड़े ही हुई ?

सुंदरी–भइया! तुम चक्रवर्ती बनोगे तो मुझे क्या दोगे।

भरत–बहन! तुम जो चाहोगी सो देंगे। भला बहन-भाई में विभाजन क्या होगा ?

नाभिराज–भरत! तुम बालक होकर भी प्रौढ़ हो, बुद्धिमान हो। (कुछ क्षण बाद)

भरत–पिताजी! इंद्रों ने आपका सुमेरुपर्वत पर अभिषेक किया था, वह पर्वत कहाँ है ?

ऋषभदेव–(मुस्कुरा कर) तब तो मैं तेरे से भी छोटा था।

बाहुबली–पिताजी! आपको तो जन्म से ही अवधिज्ञान था। आपको तो सब बताना पड़ेगा।

पिताजी–अच्छा सुनो! वह सुमेरु पर्वत इस जंबूद्वीप के ठीक बीच में विदेह क्षेत्र में है। वह इस पृथ्वी से निन्यानबे हजार चालीस योजन ऊँचा

है। इसमें १६ चैत्यालय हैं। उनको नमस्कार करो। (भरत और सभी पुत्र नमस्कार करते हैं।)

सुन्दरी–(नाभिराज से) बाबाजी! (गले का हार दिखाकर) यह मेरा हार अच्छा नहीं है।

ब्राह्मी–(अपना हार देते हुये) लो लो, सुंदरी यह मेरा हार तुम पहन लो, अच्छा है।

नाभिराज–(प्यार से सुंदरी के सिर पर हाथ फिराते हुये) बेटी! यह तो फूलों का हार है। हम अभी तुम्हें मणियों के, रत्नों के हार दिलाते हैं।

(ऋषभदेव से) युगादिपुरुष! आप इन बालकों को अलंकारों से अलंकृत कीजिए।

ऋषभदेव–लोकपाल! जो इन बालकों के लिए नये-नये हार, कंकण, मुद्रिका आदि आभूषण बनवाये हैं, उन्हें लाओ। इन सबको पहनाना है।

(लोकपाल खजांची तत्क्षण ही डब्बे खोल खोलकर हार, कंकण, कुंडल आदि निकाल कर दे रहा है। ऋषभदेव बालकों को पहना रहे हैं।)

ऋषभदेव–भरत! आओ यह पहनो यह विजयछंद हार है। इसमें ५०४ लड़ियाँ हैं। बाहुबली! आओ यह लो तुम भी विजयछंद हार पहनो।

वृषभसेन–यह लो यह देवच्छंद हार है। इसमें ८१ लड़ियाँ हैं। अनंतवीर्य! अनंतविजय! अच्युत! अपराजित! वीर! वरवीर! आओ! यह हार कंकण, कुंडल पहन लो। देखो! यह करधनी है। यह नूपुर है। ये मुद्रिकायें हैं।

बेटी! ब्राह्मी! सुंदरी! आओ, आओ, लो यह नक्षत्रमाला नाम का हार है, इसमें २७ लड़ियाँ हैं।

(सभी पुत्र-पुत्रियाँ हार, कंकण, अंगूठी आदि पहन-पहन कर खुश हो रहे हैं। धाय उन्हें नूपुर-करधनी आदि पहना रही हैं। कुछ क्षण में ही सभी बालक इन रत्न आभूषणों से सुसज्जित हो जाते हैं। युग की आदि में भगवान् ने अपने बालकों के लिये ये सब आभूषण स्वयं बनवाये हैं।

पुनः ऋषभदेव भरत, बाहुबली आदि पुत्रों को यज्ञोपवीत आदि देकर संस्कारित करते हैं)।

ऋषभदेव–भरत! देखो यह यज्ञोपवीत रत्नत्रय का चिन्ह है। (पहनाते हैं)

(युग की आदि में तीर्थंकर ने स्वयं ही अपने पुत्रों के अन्नप्राशन, चौल, यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये हैं)।

सभासद–अहो! भरत का चेहरा, शरीर संगठन, बोली और क्रियायें सब बिल्कुल ही भगवान् ऋषभदेव के समान हैं। इसीलिए तो 'पिता का आत्मा ही पुत्र है" ऐसा सूक्तिकारों ने कहा है।

सभासद नं० २–महादेव यशस्वती के वृषभसेन, अनंतवीर, आदि सभी निन्यानवे पुत्र भगवान् के सदृश रूप-गुण संपन्न हैं।

सभासद नं० ३–सचमुच में ये सभी पुत्र इसी भव से मोक्ष जाने वाले चरमशरीरी हैं।

सभासद नं० १–अहो! बाहुबली का बाहुबल तो देखो, यह युवा होकर तो अपनी शक्ति से विश्व को पराजित कर देगा।

मंत्री–इनका सौंदर्य तो देखो...ओहो! ये कामदेव के अवतार हैं।

मंत्री नं० २–सर्व कुमारों में यह भरत अतिशय तेजस्वी सूर्य के समान हैं, बाहुबली चंद्रमा के समान हैं, अन्य सभी पुत्र भी ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के समान हैं। राजपुत्री ब्राह्मी दीप्ति के सदृश और सुन्दरी चाँदनी के समान हैं।

मंत्री नं० १–इन सभी पुत्र-पुत्रियों से घिरे हुए तीर्थंकर ऋषभदेव ज्योतिषी देवों से घिरे हुए ऊँचे सुमेरु पर्वत के समान शोभायमान हो रहे हैं।

मंत्री नं० २–ओहो! देखो महाराजा नाभिराज इन पुत्र-पौत्रों से घिरे हुये कितने प्रसन्न हो रहे हैं।

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

समय–मध्यान्ह

स्थान–राजसभा

(ब्राह्मी-सुंदरी किशोरावस्था को प्राप्त हैं। अच्छी वेषभूषा से सजी हुई तीर्थंकर ऋषभदेव के समक्ष आकर प्रणाम करती हैं)।

ब्राह्मी-सुंदरी–(गवासन से बैठकर हाथ जोड़कर) पिताजी, प्रणाम!

पिता–चिरंजीव रहो पुत्रियो !

(आशीर्वाद देकर पिता दोनों पुत्रियों को प्यार से अपनी गोद में बिठा लेते हैं। पुनः उनके सिर पर हाथ फेरकर बड़े प्रेम से हँसते हुये कहते हैं) –बेटी! तुम समझती होगी कि आज हम देवों के साथ अमर वन को जायेंगी किन्तु नहीं जा सकोगी, चूँकि वे सब देव पहले ही चले गये।

पुत्रियाँ–(खुश होकर हँसते हुये) पिताजी! आपकी गोद से बढ़कर अमरवन थोड़े ही है। सभी देव चले गये तो क्या हुआ?

धाय–सच है बेटी! तीर्थंकर पिता की गोद भला किसे मिलेगी।

पिताजी–बेटी! तुम अपने शील और विनय गुण के कारण इस किशोरावस्था में भी वृद्धा के समान कुशल हो। तुम दोनों का यह शरीर, यह अवस्था और यह अनुपम शील यदि विद्या से विभूषित कर दिया जाय तो तुम्हारा जन्म सफल हो जायेगा। पुत्रियो! विद्यावान् पुरुष पंडितों के द्वारा भी सम्मान पाता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेती है।

अच्छी तरह से आराधित की गई विद्या देवी संपूर्ण मनोरथों को सफल करने वाली है।

पुत्रियाँ–(खुश होकर) पिताजी! आपके श्रीमुख से विद्यानिधि को प्राप्त करना यह हमारा बहुत बड़ा सौभाग्य है।

पिता–(सुवर्ण पट्टिका पर पीले अक्षत बिछाकर सुवर्ण लेखनी से दोनों

को "सिद्धं नमः" लिखाते हुये और साथ ही उच्चारण कराते हुये)

पुत्रियों! बोलो, "सिद्धं नमः"।

पुत्रियाँ–(हाथ से लिखते हुये) "सिद्धं नमः"। (तीन बार बोलती हैं)

(पुनः पिताजी दाहिने हाथ से दायीं तरफ बैठी ब्राह्मी को "अ आ इ ई उ ऊ आदि १६ स्वर लिखाते हैं और बाईं तरफ बैठी सुंदरी को १, २, ३, आदि अंक लिखाते हैं। पुनः पढ़ाते हैं)।

पिता–पुत्रियो! पढ़ो–अ आ इ ई उ ऊ.....।

१, २, ३, ४, ५,.....।

देखो बेटी! यह सिद्ध मातृका रूप अक्षर विद्या ही लिपि विद्या है और यह गणित विद्या रूप अंक ही अंकविद्या है।

(कुछेक क्षण ये कन्यायें लिखने-पढ़ने में मगन हो जाती हैं। पुनः पिता उपदेश देते हैं)।

पिता–कन्याओ ! व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह का नाम "वाङ्मय है। वाङ्मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है।

ब्राह्मी–पिताजी! मुझे व्याकरण पढ़ाइए।

पिता–हाँ, पढ़ो "सिद्धो वर्णसमाम्नायः"।

ब्राह्मी–"सिद्धो वर्णसमाम्नायः"। (एक क्षण बाद) पिताजी! अब छंदशास्त्र पढ़ाइये।

पिता–बोलो। "यमाताराजभानसलगाः" आदि लघु यगण हैं, तीनों गुरु मगण हैं....। इस छंद में उक्ता अत्युक्ता आदि २६ भेद हैं। (कन्यायें पढ़ रही हैं। पुनः)–

ब्राह्मी–पिताजी! अलंकार क्या है ?

पिता– जो जेवर के समान काव्य की वाणी को अलंकृत कर दे, उसका नाम अलंकार है।

इसके दो भेद हैं–शब्दालंकार, चित्रालंकार।

सुन्दरी–पिताजी! हमें गणित बताइये।

पिता–बेटी! ४ और ४ कितने हुए ?

सुन्दरी–पिताजी, ८ हुये ?

पिता–इसे संकलन अर्थात् जोड़ कहते हैं और ८ में से ३ निकाल दिये तो ?

सुन्दरी–५ बचे।

पिता–पुत्री! इसे व्यवकलन अर्थात् घटाना कहते हैं।

(एक क्षण शांति के बाद भरत बाहुबली आदि प्रवेश करते हैं)।

सभी पुत्र–(घुटने टेककर नमस्कार करके) पिताजी! प्रणाम!

पिता–(दाहिना हाथ उठाकर) आयुष्मन्त रहो पुत्रो !!

आओ, आओ!! (भरत को गोद में बिठा लेते हैं। पुनः सिर पर हाथ फिराकर प्रेम से कहते हैं)–तू तो धूलि में धूसरित होकर आया है।

भरत–पिताजी! खेलने में आनंद आता है। (धूल को झाड़ते हुये) अब आपके पास आकर सब धूल झड़ गई! देखो पिताजी! अब मेरे कपड़े साफ हो गये।

पिता–(हँसकर) हाँ, अब तुम स्वच्छ हो गये।

(इसी बीच सभी बालक अपने कपड़े साफ कर लेते हैं। तब पिता कहते हैं)

पुत्रो–तुम लोगों की यह उम्र विद्या पढ़ने के योग्य है। देखो, यह विद्याधन महानिधि हैं। चिंतामणिरत्न और कामधेनु के समान है। यह विद्या ही धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ को फैलाती है। विद्या ही बंधु है और विद्या ही सच्चा मित्र है।

सभी पुत्र–(खुश होकर) हाँ, हम भी विद्या पढ़ेंगे।

पिता–(पूर्ववत् सुवर्ण पट्ट पर पीताक्षत बिछाकर सुवर्ण लेखनी से भरत को लिखाते हैं। सभी बालक भी पीताक्षत पर सुवर्ण कलम से लिखते

हैं, "सिद्धं नमः")

सभी पुत्र–(एक स्वर से) "सिद्धं नमः।" (तीन बार बोलते हैं)।

(कुछ देर तक सब पढ़ते रहते हैं। वातावरण शांत है। पुनः)–

पिताजी–भरत! देखो तुम्हें अर्थशास्त्र और नृत्यशास्त्र पढ़ना है। बाहुबली! तुम कामनीति, स्त्री-पुरुषों के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, तंत्रविद्या और रत्न परीक्षा सीखो।

वृषभसेन–तुम संगीत, वाद्यशास्त्र आदि गन्धर्व शास्त्र पढ़ो। अनंतविजय! तुम्हें चित्रकला सिखाता हूँ। देखो सूत्रकार अर्थात् मकान बनाने की विद्या सीखो!.....

सभासद नं० १–अहो! जहाँ तीर्थंकर भगवान् स्वयं पढ़ाने वाले गुरु हों और विद्यार्थी स्वयं उन्हीं के पुत्र-पुत्रियाँ हों वहाँ पर विद्वत्तों का क्या कहना! दोनों पुत्रियाँ तो सचमुच में सरस्वती की साकार मूर्ति दिख रही हैं। और सभी पुत्र भी एक से एक बढ़कर सर्वविद्या, सर्वगुणसम्पन्न हो गये हैं।

पटाक्षेप

पंचम दृश्य

समय–मध्यान्ह

स्थान–राजसभा।

(महाराज नाभिराज सिंहासन पर आरूढ़ हैं, चँवर ढुर रहे हैं। सभासद बैठे हैं। प्रजा के लोग आते हैं)

प्रजाजन–(उच्च स्वर से) महाराजा नाभिराज की जय हो, महाराजा नाभिराज की जय हो!!

नाभिराज–(प्रसन्न मुद्रा में) आइये! आइये!! अयोध्यावासियो! आप क्या चाहते हैं ?

प्रजा–महाराज! हम लोग भूख-प्यास से व्याकुल होकर अपनी आजीविका की समस्या लेकर आपके पास आये हैं।

नाभिराज–अच्छा, प्रजाजनो! सुनो, अब तुम लोग तीर्थंकर के अवतार श्री ऋषभदेव के पास जाओ, वे ही तुम्हें आजीविका का उपाय बतलायेंगे।

(इतना सुनकर प्रजा नाभिराज को नमस्कार कर श्री ऋषभदेव की सभा में पहुँच जाती है)

प्रजा–जय हो, राजाधिराज ऋषभदेव की जय हो।

(श्री ऋषभदेव को नमस्कार कर हाथ जोड़कर प्रमुख लोग कहते हैं)

सभी लोग–हे नाथ! त्राहि माम्, त्राहि माम्।

ऋषभदेव–(सान्त्वना देते हैं) कहो–कहो क्या बात है ?

एक प्रमुख–हे प्रभो! जीवित रहने की इच्छा से हम लोग आपकी शरण में आये हुए हैं। हे तीन लोक के नाथ! जो कल्पवृक्ष आज तक हम लोगों की पिता के समान रक्षा कर रहे थे, वे सब अब फल नहीं दे रहे हैं। हम लोग भूख-प्यास से व्याकुल हो रहे हैं।

कुछ लोग (दीन वाणी में)–भगवन्! आप अब हम सबकी रक्षा कीजिये, प्रभो! हम लोग क्या खायें ? क्या पहनें, क्या पियें ? ठंडी-गर्मी से कैसे बचें? इन सबका उपाय बतलाइये ? (एक स्वर से सभी लोग) है दयानिधे! अब आप दया करके हमारी रक्षा करो, रक्षा करो!!

ऋषभदेव–(करुणा से आर्द्र हो चिंतन मुद्रा में–स्वगत्) अहो! अब यह भोगभूमि समाप्त होकर कर्मभूमि आ गई है। इस जंबूद्वीप के पूर्व-पश्चिम भाग में जो विदेह क्षेत्र है, वहाँ जो स्थिति है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है। तभी यह प्रजा जीवित रह सकती है। वहाँ जैसे असि, मषि आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्ण व्यवस्था है और जैसी ग्राम, नगर आदि की रचना है, यहाँ भी वह सब होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से इन

सबकी आजीविका चल सकती है। (प्रगट) अच्छा, तुम लोग भयभीत मत होओ, अभी हम तुम्हें सब उपाय बतलाते हैं...प्रभु इन्द्र का मन स्मरण करते हैं। इन्द्र देवों के साथ उपस्थित हो जाता है।

इन्द्र–भगवन्! नमोस्तु (साष्टांग नमस्कार करके) प्रभो! क्या आज्ञा है?

भगवान्–इन्द्रराज! प्रजा के लिए ग्राम, नगर आदि की व्यवस्था करनी है।

इन्द्र–देव! आपकी आज्ञा के अनुसार मैं सब व्यवस्था बनाये देता हूं। (देवों से) देवगण! देखो! सर्वप्रथम शुभ मुहूर्त में तुम इस अयोध्या के मध्य जिनमंदिर का निर्माण करो, तत्पश्चात् चारों दिशाओं में भी जिनमंदिर बनाकर देश, नगर, गाँव आदि की रचना करो। हाँ, चलो मैं भी साथ-साथ चलता हूँ।

(इन्द्र भगवान् को प्रणाम कर देवों को साथ लेकर चला जाता है। क्षणमात्र में ही मंदिर, शहर, नगर, गाँव आदि बनाकर आ जाता है और कहता है)–भगवन्! सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरु जांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कौशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, सुरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, बाह्लीक, तुरुष्क, शक और केकय ये बावन प्रमुख देश बनाये हैं। इनके मध्य अयोध्या, उज्जयिनी, हस्तिनापुरी आदि नगरियाँ बना दी हैं। इसी प्रकार अनेक गाँव, खेड़े आदि बना दिये हैं। उत्तर में विजयार्ध पर्वत के समीप से लेकर इधर दक्षिण में लवणसमुद्र पर्वत तथा पूर्व-पश्चिम में गंगानदी-सिंधु नदी के तट तक भरतक्षेत्र के इस आर्यखण्ड में मैंने सर्वत्र गाँव, नगर बनाकर उनमें परकोटे, खाई आदि से सुरक्षा बाँधकर अनेक रक्षक पुरुष नियुक्त कर दिये हैं।

प्रभो! हमने प्रजा के लोगों को उन-उन के योग्य स्थानों में ले जाकर बसा दिया है।

ऋषभदेव–(प्रसन्न मुद्रा में) बहुत अच्छा!!

इन्द्र–(हाथ जोड़कर) प्रभो! अब हमें जाने की आज्ञा ?

ऋषभदेव–ओम्!

(इन्द्र देवों सहित चला जाता है) कुछ क्षण बाद–

ऋषभदेव–(उपदेश देते हुए) हे प्रजाजनो! असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छह क्रियायें हैं। इन क्रियाओं के द्वारा तुम लोग आजीविका करो।

एक पुरुष–प्रभो! इनका खुलासा क्या है ?

ऋषभदेव–देखो! तलवार आदि धारण करना असि कर्म है। लिखकर आजीविका करना मषि कर्म है। जमीन को जोतकर बीज बोना आदि कृषि कर्म है। शास्त्र पढ़ाकर या नृत्य गायन आदि सिखाकर आजीविका करना विद्या कर्म है। व्यापार करना वाणिज्य कर्म है। और हस्त की कुशलता से जीविका करना शिल्प कर्म है। इस शिल्प में चित्र खींचना, फूल-पत्ते काटना आदि बहुत प्रकार हैं।

पुरुष नं० २–प्रभो! कौन क्या क्रिया करे ?

ऋषभदेव–देखो, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण अनादि निधन हैं। विदेह क्षेत्र में ये सदाकाल रहते हैं। यहाँ भी अब तुम लोगों में यही विभाजन करना है।

(हाथ के इशारे से)

तुम लोग तलवार आदि धारण कर प्रजा की रक्षा करने में समर्थ हो, अतः तुम क्षत्रिय हो। (दूसरों से) तुम लोग व्यापार आदि करके आजीविका चलाओ, तुम्हें वैश्य संज्ञा है। (तीसरे लोगों से) तुम लोग इन कार्यों में आने को असमर्थ समझ रहे हो, अतः सेवा, सुश्रूषा आदि करके तुम लोग अपनी जीविका चला सकते हो। इसलिए तुम्हें 'शूद्र' संज्ञा है।

सब लोग–प्रभु का उपदेश, आदेश पाकर हम लोग धन्य हो गये।

मंत्री–प्रभु ने जो वर्ण व्यवस्था बनाई है, उसी के अनुसार आप लोगों को कर्म करना है।

मंत्री नं० २–हाँ, अपनी आजीविका के सिवाय आप किसी को अन्य की आजीविका नहीं करनी है। अन्यथा संकर दोष आ जायेगा।

प्रजा के कुछ लोग–हाँ, हाँ, हम सभी लोग प्रभु की आज्ञानुसार ही सब कर्म करेंगे।

पुरुष नं० १–विवाह सम्बन्ध आदि कोई भी कार्य हो, हम तो पहले प्रभु से आज्ञा लेंगे। फिर कार्य करेंगे।

मंत्री–बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। अब यह कर्मभूमि की व्यवस्था बनाकर प्रभु आज आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा के दिन 'प्रजापति' हुए हैं।

प्ररुष नं० २–भगवान् ही तो युगस्रष्टा, विधाता और ब्रह्मा हैं।

सभी लोग–आदि ब्रह्मा भगवान् ऋषभदेव की जय।

(जयनारे के साथ प्रस्थान कर जाते हैं)

पटाक्षेप

छठा दृश्य

समय–मध्यान्ह।

स्थान–राजसभा।

(किंचित् दूर नाभिराज विराजमान हैं, इन्द्र अनेक देवों के साथ आकर प्रणाम कर परामर्श कर रहे हैं।)

इन्द्र–महाराज! तीर्थंकर ऋषभदेव का अब सम्राट पद पर अभिषेक करना उचित होगा।

नाभिराज–इन्द्रराज! आपने बहुत अच्छी बात कही है। इस भरतक्षेत्र के छह खंडों पर इनका एकछत्र शासन चल रहा है। अतः सम्राट पद पर इन पुरुदेव का अभिषेक होना अत्युत्तम है।

इन्द्र–(देवों से) देवगण! हमने पिताजी से अनुमति ले ली। अब तुम

लोग शीघ्र ही राज्याभिषेक के लिये मण्डप तैयार करो।

देवगण–(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा देवराज की।

(एक क्षण में मण्डप और व्यवस्थायें तैयार हो जाती हैं। राज्याभिषेक शुरू हो जाता है। तीर्थंकर प्रभु को उच्च आसन पर विराजमान किया है। तोरण पताका आदि से सजावट की गई है। संगीत, नृत्य हो रहा है। अनेक बाजे बज रहे हैं) नेपथ्य से–

हे नाथ! त्वं जय-जय! जीव-जीव! वर्धस्व-वर्धस्व!

इन्द्र–(अभिषेक करते हुये) ऊँ आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे अस्या अयोध्या नगर्यां मध्ये अस्मिन्...शुभ मुहूर्ते इक्ष्वाकुवंशतिलकस्य महाराजनाभिराज पुत्रस्य आदिब्रह्मा: श्री पुरुदेवस्य सम्राटपदस्य अभिषेक करोमि स्वाहा। जगतां सर्वशांतिर्भवतु।

(पहले इन्द्र अभिषेक करता है पुनः देवगण, पुनः श्री ह्री देवियाँ अभिषेक करती हैं–अनंतर नाभिराज कलश लेकर आते हैं)।

नाभिराज–सभी राजाओं में श्रेष्ठ ये ऋषभदेव वास्तव में इस भरतक्षेत्र के सम्राट हैं।

(इतना कहकर अभिषेक करते हैं। इसके बाद अनेक मुकुटबद्ध राजागण अभिषेक करते हैं। पुनः अयोध्या के प्रमुख लोग अभिषेक करते हैं। कहते हैं–आज हमारी सरयू नदी का जल पवित्र हो गया।

अभिषेक के बाद प्रभु वस्त्र, अलंकार आदि उतार कर छोड़ देते हैं। इन्द्र उन्हें स्वर्ग से लाये गये वस्त्र अलंकार आदि पहनाते हैं। देवांगनायें आरती उतार रही हैं। अनंतर प्रभु को उत्तम सिंहासन पर बिठा देते हैं। नाभिराज मुकुट हाथ में लेकर आते हैं)।

नाभिराज–महामुकुटबद्ध राजाओं के अधिपति ये तीर्थंकर ऋषभदेव ही हैं।

(इतना कहकर प्रभु के सिर पर मुकुट रख देते हैं। इसी क्षण बाजों का शब्द और जयकार के नारे होने लगते हैं)।

सभी देवगण–सार्वभौम सम्राट ऋषभदेव की जय हो। युगादिब्रह्मा पुरुदेव की जय हो!

सौधर्म इन्द्र–पूरे जगत् के एकमात्र बंधु प्रभु ऋषभदेव ही हैं। (ऐसा कहकर प्रभु के ललाट में पट्ट बाँध देते हैं। प्रभु के कंधे पर यज्ञोपवीत है, माला, करधनी, कुंडल, कंकण, भुजबंध, हार आदि सभी आभूषण शोभ रहे हैं। पुनः इन्द्र उस सभा में पुष्पांजलि बिखेरकर नृत्य शुरू कर देता है। अनंतर देवगण प्रस्थान कर जाते हैं। कुछ क्षण शान्ति के बाद कुछ प्रमुख लोग आते हैं। नमस्कार कर बैठ जाते हैं। भगवान उन्हें उपदेश देते हैं)।

ऋषभदेव–हे आयुष्मंतों! अब इस कर्मभूमि में राजाओं का होना आवश्यक है।

एक पुरुष–हे नाथ! ऐसा क्यों ?

ऋषभदेव–इसलिये कि भोग-भूमि में न तो कोई अपराध होते थे, और न उन पर अनुशासन करने की या उन्हें दण्ड देने की कोई आवश्यकता ही थी। किन्तु अब इस कर्मभूमि में राजा के अभाव में प्रजा ऐसी होगी कि अंतरंग से दुष्ट-बलवान मनुष्य दुर्बलों को सतायेंगे किन्तु राजा के भय से गलत कार्य नहीं कर पायेंगे।

दूसरा पुरुष–प्रभो! आप हम सबके स्वामी हैं और इस जगत् के भी नाथ हैं। आप जो भी आज्ञा देंगे, हम लोग पालन करेंगे।

ऋषभदेव–(एक क्षण सोचकर) अच्छा मंत्रियों! तुम हरि, अकंपन, काश्यप और सोमप्रभ इन चारों महापुरुषों का तथा कच्छ और महाकच्छ महानुभावों का राज्याभिषेक कराओ।

(मंत्री राज्याभिषेक कराकर उन छहों को मुकुट बाँध देते हैं)

सम्राट ऋषभदेव–(हरि आदि से) अब तुम चारों महामण्डलीक राजा घोषित किये जाते हो। सोमप्रभ! तुम कुरुवंश शिरोमणि हो, कुरुक्षेत्र का राज्य करो। तुम्हारी राजधानी हस्तिनापुरी रहेगी। हरिकांत! तुम हरिवंश

को अलंकृत करो। अकंपन! तुम नाथवंश के अधिनायक हो, तुम्हें बनारस नगरी को राजधानी बनाना है। हे मेघवान्! तुम उग्रवंश के स्वामी हो। हाँ, तुम चारों के आश्रित चार-चार हजार राजा रहेंगे।

हे कच्छ! महाकच्छ! आप दोनों अधिराजा हैं।

छहों राजा–(हाथ जोड़कर) हे प्रभो! राजनीति क्या है ?

सम्राट–योग, क्षेम और दण्ड ये तीन राजनीतियाँ हैं। इनका तुम्हें पालन करना होगा।

कच्छ–प्रभो! इनका खुलासा कर दीजिये।

सम्राट–सुनो, नवीन वस्तु को प्राप्त करना योग है। प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा करना क्षेम है। और प्रजा से अपराध हो जाने पर दण्ड देना यह दण्ड नीति है।

अकंपन–प्रभो ! दण्ड क्या-क्या हैं ?

सम्राट–आज की प्रजा के लिए 'हा' 'मा' और 'धिक्' ये तीन दण्ड हैं।

सोमप्रभ–इन्हें कैसे देना ?

सम्राट–सुनो, जब कोई कुछ अपराध करके आवे तो 'हा' कहना। इसका अर्थ है हाय! तुमने बुरा किया। यदि वही मनुष्य पुनः अपराध करके आवे तो कहना 'हा' 'मा'। इसका अर्थ है हाय तुमने बुरा किया, अब ऐसा नहीं करना। इसके बाद भी यदि वह अपराध करके लाया जाता है तब कहना 'हा मा धिक्' इसका अर्थ है, हाय तुमने बुरा किया। पुनः ऐसा नहीं करना था। तुम्हें धिक्कार हो।

हरिकांत–प्रभो! इन तीन दण्ड[1] से ही प्रजा अनुशासित हो जावेगी।

सम्राट–हाँ, इस युग की प्रजा के लिये इतना ही दण्ड पर्याप्त है। इसके बाद वह अपराध नहीं करेगी।

---

१. इसके बाद धन का जुर्माना, कारावास आदि दण्ड सम्राट भरत ने चलाये हैं।

चारों राजा–(हाथ जोड़कर) हे तीन लोक के स्वामी! हे सार्वभौम सम्राट! आज हम लोग आपसे राजनीति सीखकर कृतार्थ हो गये हैं। आपकी कृपा प्रसाद से हम प्रजा की रक्षा करेंगे।

कच्छ-महाकच्छ–प्रभो! आप इस युग की आदि में गृहस्थ नीति और राजनीति के कर्त्ता होने से युगस्रष्टा हैं, मनु हैं, कुलकर और कुलधर हैं। तथा आपने वर्ण-व्यवस्था बनाई है, इसीलिए आप विधाता हैं, विश्वकर्मा हैं, और ब्रह्मा हैं।

सभी लोग–(उच्च स्वर से) जय हो, पुरुदेव की जय हो, आदि ब्रह्मा ऋषभदेव की जय हो।

प्रस्थान...।

पटाक्षेप

सातवाँ दृश्य

समय–मध्यान्ह।

स्थान–इन्द्रसभा।

सौधर्म इन्द्र–(स्वगत्) तीर्थंकर ऋषभदेव की आयु ८४ लाख वर्ष पूर्व की है। उसमें से ८३ लाख वर्ष पूर्व तक उनका समय व्यतीत हो चुका है। प्रभु के राज्य और भोगों से विरक्त होने का यह समय है क्योंकि इन्हीं के द्वारा अब इस भरतक्षेत्र में धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति होने वाली है। (कुछ सोचकर)

हे देवों! आज हमें मर्त्यलोक में चलना है।

एक देव–(हाथ जोड़कर) देवराज! किसलिये ?

इन्द्र–तीर्थंकर ऋषभदेव की उपासना करने के लिये।

दूसरा देव–तो पूजा-सामग्री आदि सब चीजें लेना है ?

इन्द्र–हाँ, गंधर्व देवों को, अप्सराओं को और सभी परिकर को भी साथ लेना है।

(देव बाहर जा तत्क्षण आ जाता है)

एकदेव–देवेन्द्रजी चलने की तैयारी हो गई। ऐरावत हाथी तैयार है।

(इन्द्र सपरिकर चलकर अर्धनिमिष में अयोध्या में आकर राजसभा में प्रवेश करते हैं)।

इन्द्र–(घुटने टेककर) भगवन्! प्रणमाम्यहं।

(सभी देवगण नमस्कार करते हुए जयघोष करते हैं)

देवगण–जय हो तीर्थंकर पुरुदेव की जय हो।

(सर्वप्रथम इन्द्र भगवान् की पूजा करता है। पश्चात् संगीत गीत नृत्य प्रारम्भ कर देता है। गन्धर्व देव वीणा आदि बजा रहे हैं। नीलांजना अप्सरा नृत्य कर रही है)।

नीलांजना–(नृत्य करते हुए)

इस युग का तुम्हें नमन है, सब जग का तुम्हें नमन है।
इन्द्र सभी मिल करें वन्दना, हो रहें हर्ष मगन हैं ॥
सौ-सौ बार नमन है।
नमन है, नमन है, नमन है ॥
छह महीने पहले कुबेर ने, रत्न विविध बरसाये।
माता मरुदेवी के आंगन, याचकजन हरषाये।
इक रात्रि माता ने देखा, सोलह सुखद सुपन है।
कृतयुग के अवतार आपको, सौ-सौ बार नमन है ॥
नमन है.....॥१॥
तिथि आषाढ़ बदि दूज भली थी, आप गर्भ में आये।
चैत बदी नवमी दिन जन्मे, सुरनर मिल गुण गायें ॥
सुमेरु पर्वत पर ले जा, इन्द्रों ने किया न्हवन है।
नाभिराज सुत ऋषभ आपको, सौ-सौ बार नमन है॥
नमन है..... ॥२॥

शचि ने तुमको गोद में लेकर, वस्त्र मुकुट पहनाया।
सुरपति रूप निरख कर हरषा, नेत्र हजार बनाया॥
नाम रखा श्री ऋषभदेव, सब सुरगण हुए मगन हैं।
हे युग के अवतार आप को, सौ-सौ बार नमन है॥
नमन है.....॥३॥

यौवन में पितु नाभिराज ने, आपका ब्याह रचाया।
यशस्वती सुनन्दा रानी का, है सौभाग्य जगाया॥
एक सौ इक सुत दो पुत्री, इन दो से लिया जनम है।
भरत बाहुबलि के पितु, तुमको सौ-सौ बार नमन है॥
नमन है.....॥४॥

अति मषि आदि छह कर्मों का प्रभु उपदेश दिया है।
वर्ण व्यवस्था राज्य व्यवस्था को साकार किया है॥
हे युग स्रष्टा! आदि विधाता, शत-शत अभिवंदन है।
कृतयुग के.....

(इत्यादि गाते हुए नीलांजना सहसा अदृश्य हो गई। नृत्य भंग न हो, इसी भय से इन्द्र ने उसी क्षण नीलांजना जैसी दूसरी देवी खड़ी कर दी। नृत्य बराबर चालू रहा। सभा में कोई कुछ न समझ सके किन्तु तीर्थंकर प्रभु अवधिज्ञान से सब कुछ जान गये। भगवान उसी क्षण विरक्त हो सोच रहे हैं)।

ऋषभदेव–(स्वगत) अहो! इन्द्र ने आज का यह भक्ति का आयोजन मेरे वैराग्य के लिए ही किया था। सचमुच में मेरा २० लाख वर्ष पूर्व का कुमार काल निकल गया। पुनः इस राज्य संचालन में मैंने ६३ लाख वर्ष पूर्व बिता दिए। देखो तो सही, यह इतना लम्बा काल सुख में कैसे निकल गया, पता ही नहीं चला।

यह राज्य वैभव, यह यौवन, यह इन्द्रिय सुख सब कुछ बिजली के सदृश क्षण भंगुर है। जैसे कि यह नीलांजना अप्सरा देखते-ही-देखते नष्ट

हो गई। मृत्युराज का ग्रास बन गई, वैसे ही प्रत्येक प्राणी अनन्त संसार में यमराज का ग्रास बना हुआ है। इस मृत्यु को जीतने का उपाय जैनेश्वरी दीक्षा ही है...अब मेरा मात्र एक लाख वर्ष पूर्व का ही काल शेष रहा है। अब मुझे मोक्ष की प्राप्ति के लिए दीक्षा लेनी चाहिए।

(इतना सोचते ही लौकांतिक देव आकर पुष्पांजलि क्षेपण करते हुए कहते हैं—सभी लौकांतिक) (उच्च स्वर से) तीर्थंकर ऋषभदेव की जय, आदि ब्रह्मा पुरुदेव की जय।

(सब घुटने टेककर नमस्कार करते हैं। पुनः खड़े होकर हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं)।

एक देव—हे युगादि पुरुष! युग के प्रथम अवतार! हे धर्म-सृष्टि के विधाता! आपने जो दीक्षा का विचार किया है सो बहुत ही उत्तम है। अठारह कोड़ाकोड़ी सागर के बाद इस भरत क्षेत्र में अब आप मोक्षमार्ग को खुला करेंगे। इसलिए आप ही मुक्तिपथ के विधाता हैं—निर्माता हैं।

दूसरा देव—हे युगस्रष्टा! विश्व के सभी प्राणी मोहरूपी अंधकार में सोये हुए हैं। उन्हें ज्ञानप्रकाश देकर मुक्ति मार्ग में ले चलने वाले उनके नेता आप ही हैं। अतः अब आप तपरूपी अलंकारों से सुसज्जित होकर मुक्तिकन्या के स्वयँवर मंडप में प्रवेश करें।

तृतीय देव—आप स्वयं प्रबुद्ध होने से स्वयंबुद्ध हैं। भगवान् हैं। फिर भी हम लोग जो आपके वैराग्य की अनुमोदना कर रहे हैं सो यह हम लोगों का नियोग मात्र है।

चतुर्थ देव—भगवन! हम लोग तो केवल आपकी प्रशंसा और स्तुति ही कर सकते हैं न कि आपको संबोधन! हम लोग तो आपसे सम्बोधन प्राप्त करने की प्रतीक्षा ही कर रहे हैं।

पंचम देव—हे पुरुदेव! हे तीर्थंकर! आज हम लोग आपके दीक्षा-कल्याणक में भाग लेकर धन्य हो गए हैं।

(इतने में ही सौधर्म इन्द्र पालकी को लाकर रख देते हैं)।

ऋषभदेव–हे मन्त्रियो! तुम शीघ्र ही भरत के राज्याभिषेक की तैयारी कराओ।

(यशस्वती रानी भरत पुत्र के राज्याभिषेक की खुशी में मंगल चौक आदि पूर रही हैं। राज्याभिषेक सम्पन्न होते ही तीर्थंकर प्रभु अपने सिर का मुकुट उतार कर भरत के सिर पर रख देते हैं)।

ऋषभदेव–हे भरत! आज से तुम इस अयोध्या के ही नहीं, सारी पृथ्वी के स्वामी हो, सम्पूर्ण प्रजा का पुत्रवत् पालन करो।

हे बाहुबलि! तुम युवराज हो, हाँ तुम पोदनपुर का राज्य संभालो।

बेटा वृषभसेन! तुम पुरिमतालपुर के स्वामी हो, देखो राजनीति का अच्छी तरह पालन करना।

(इस तरह भगवान सभी पुत्रों को राज्य बाँटकर आप सभा में बैठे हुए माता-पिता से आज्ञा माँगते हैं)।

हे तात! हे मातः! हमने इतने दिन आपकी प्रेरणा से राज्य सँभाला है अब मैं जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। आप आज्ञा प्रदान कीजिए।

(इसके बाद इन्द्रगण भगवान् का मँगल अभिषेक कर वस्त्र अलँकार पहनाते हैं। अनन्तर ऋषभदेव पालकी में बैठ जाते हैं। जयकारे के नारे से आकाश गूँज उठता है। पहले राजा लोग पालकी उठाते हैं, फिर विद्याधर लोग उठाते हैं। अनन्तर इन्द्र स्वयँ अपने कंधों पर पालकी लेकर कुछ दूर धीरे-धीरे चलते हैं। भगवान् के साथ यशस्वती, सुनंदा, ब्राह्मी, सुन्दरी, भरत, बाहुबली आदि चल रहे हैं। यशस्वती सुनंदा के नेत्र सजल हो जाते हैं। तब वे आँचल से पोंछ रही हैं। एक वृद्ध महोदय कहते हैं)–

वृद्ध महोदय–हे बाले! स्वामी के मंगल प्रस्थान में रोकर अमंगल मत करो।

एक देव–अहो मातः! जगद्गुरु ऋषभदेव मोहशत्रु को जीतने का उद्यम कर रहे हैं।

दूसरा देव–हे सौभाग्यशालिनि! इन प्रभु से ही अब भव्यजीवों को

मोक्षमार्ग का समीचीन ज्ञान प्राप्त होने वाला है।

वृद्ध महोदय–(बहुत-सी महिलाओं को रोकते हुए) भद्रे! बस, भगवान् की आज्ञा है कि अब आप लोग वापस चलिए।

(ऐसा कहकर वृद्ध अनेक महिलाओं को साथ लेकर अयोध्या वापस आ जाते हैं। पुनः कुछ आगे से इन्द्र पालकी को कंधे पर लेकर आकाश से चलने लगते हैं। महाराज नाभिराज, मरुदेवी, यशस्वती, सुनंदा, भरत बाहुबली आदि पैदल ही चल रहे हैं। यशस्वती सुनंदा पूजन की सामग्री हाथ में लिए हैं। सिद्धार्थ वन में पहुँच कर प्रभु पहले से बने हुए चौक पर पूर्व दिशा में मुख कर बैठ जाते हैं। पुनः उपदेश देते हैं)–

ऋषभदेव–हे भव्यजीवों! अनादि काल से यह जीव–पुत्र, मित्र, माता-पिता आदि स्वजन में अनुरागी हो रहा है। यह मोह ही इस संसार का मूल बीज है। इस मोह को नष्ट करके ही कर्मों का नाश किया जा सकता है। इसलिए आप लोग अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए धर्म को धारण करो। जिससे इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करोगे। इस संसार को पार करने के लिए यह धर्म ही जहाज है।

(इतना कहकर अपने स्वजनों से आज्ञा माँगते हैं)

अच्छा! अब मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

(सभी हाथ जोड़कर मौन स्वीकृतिपूर्वक आज्ञा देते हैं। भगवान् 'ॐ नमः सिद्धं–तीन बार उच्चारण करके सिर के केशों को लोंचकर वस्त्र आभरण त्याग कर देते हैं। यहाँ नाटक के मंच पर कुछ अंधेरा कर देना चाहिए। पश्चात् ध्यान में खड़े भगवान् की फोटो दिखा देनी चाहिए। उसी में प्रभु के साथ ४ हजार राजा दीक्षित हुए हैं। उन्हें भी दिखा देना चाहिए। अथवा पहले से झांकी तैयार हो जिससे कागज आदि की मूर्तियाँ ध्यानस्थ खड़ी दिखा देनी चाहिए। क्योंकि खेल में या हँसी-मजाक में भी किसी को दीक्षा नहीं लेना चाहिए, यह बात ध्यान रखनी है। उस समय इन्द्र भगवान् के केशों को रत्नपिटारे में रखकर क्षीर समुद्र में विसर्जित करने के लिए

जा रहे हैं)।

इन्द्र–अहो! ये केश धन्य हैं कि जो तीर्थंकर ऋषभदेव के मस्तक पर अधिष्ठित हुये थे। पाँचवाँ क्षीर समुद्र भी धन्य है जो इन केशों को भेंट स्वरूप प्राप्त करेगा।

भरत बाहुबली आदि–(पूजा करते हुए)–

सिंधु को नीर ले स्वर्ण झारी भरूँ, नाथ के पाद में तीन धारा करूँ। इंद्रशतवंद्य तीर्थेश तुमको जजूं, रत्नत्रय प्राप्त कर भवभ्रमण से बचूँ॥ ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्रीऋषभदेवाय जल.....।

पटाक्षेप

आठवाँ दृश्य

समय–मध्यान्ह।

स्थान–तपोवन।

(भगवान् ध्यान में लीन हैं। जो मुनि साथ में दीक्षित होकर ध्यान में खड़े थे वे भूख-प्यास से व्याकुल हो आस-पास के वृक्षों के फल खाकर तालाब में पानी पीने लगे। तभी वन-देवता ने आकाशवाणी की। यह दृश्य चित्र में ही दिखाना चाहिये। अथवा झाँकी में कागज आदि के साधु दिखाने चाहियें। किन्हीं बालक आदि को नहीं लेना चाहिये)।

आकाशवाणी–

हे अज्ञानियो! यह दिगंबर मुद्रा सर्वश्रेष्ठ है तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती के भी धारण योग्य है इसे तुम लोग कायरता का स्थान मत बनाओ। इस मुद्रा में तुम लोग स्वयं अपने हाथ से फल मत तोड़ो और तालाब का अप्रासुक पानी मत पीओ।

(वन देवता के ऐसे वचन सुनकर ये सब डर गये और दिगंबर मुद्रा छोड़कर अनेक वेष धारण कर लिये। किसी ने वल्कल को पहन लिया, किसी ने पत्तों से गुह्यांग ढक लिया, किसी ने लंगोटी लगा ली, किसी ने

भस्म लगाई, किसी ने जटा बढ़ाई और किसी ने हाथ में दण्ड कमंडलु धारण कर लिया। अब वे लोग इच्छानुसार फल खाकर झरने व तालाब का जल पीने लगे। ये सब फूस की झोपड़ी बनाकर वहीं रहने लगे। किन्तु राजा भरत के डर से घर नहीं गये। उनमें जो भरत का पुत्र मारीचि कुमार था वह परिव्राजक बनकर योग शास्त्र और सांख्य शास्त्र का उपदेश देने लगा)।

मारीचि साधु–(हाथ में शास्त्र है) सभी शिष्यो! सुनो, दो ही तत्त्व हैं–प्रकृति और पुरुष। प्रकृति से महान और महान से अहंकार प्रगट होता है।

एक शिष्य–गुरुदेव! आपके उपास्य देव कौन हैं ?

मारीचि–हमारे उपास्य देव भगवान् ऋषभदेव ही हैं।

देखो, हम लोगों ने उन्हीं की भक्ति से तो दीक्षा ली है।

दूसरा शिष्य–अरे भाई! भगवान् तो ध्यान में खड़े हैं। दो-तीन माह हो गए, न इन्हें भूख है न प्यास है, न नींद है न आलस, भला हम लोग इतने दिन भूखे-प्यासे कैसे रहते ?

तीसरा शिष्य–तभी तो हम लोग कंद-फल आदि खाने लगे थे।

चौथा शिष्य–भाई! भरत के डर से हम लोग घर भी नहीं जा सकते। पत्नी, बच्चों की याद आ रही है।

पाँचवाँ शिष्य–देखो, वनदेवता ने दिगंबर वेष में वैसा करने से मना कर दिया। तब हम सबने तरह-तरह के वेष बना लिए हैं।

मारीचि कुमार–अब तो किसी को कोई तकलीफ नहीं है ?

सभी साधु–अरे महाराज! आप जैसे गुरु को पाकर भला तकलीफ का क्या सवाल ? हम लोग सुख से झोंपिड़यों में रह रहे हैं। हाँ, कभी-कभी घर की याद जरूर आ जाती है। परन्तु भरत महाराज घर में नहीं घुसने देंगे, क्या दण्ड देंगे कौन जाने ?

मारीचि कुमार–भगवान् किसलिए अभी तक खड़े हैं कौन जाने! जब ये घर चलेंगे तभी सब इनके साथ ही चलेंगे।

एक साधु–हाँ, हम लोगों को जो प्रभु को अच्छा लगता है, वही करना चाहिए, ऐसा सोचकर ही घर-बार छोड़कर इनके साथ दीक्षा ले ली है।

कच्छ-महाकच्छ साधु–ठीक है प्रभु जब आज्ञा देंगे तभी हम लोग घर जायेंगे, नहीं तो यहीं पर रहेंगे। आओ चलो भगवान् के चरणों की पूजा करें।

(सब लोग डलिया में फूल, अगरबत्ती, दीपक, जंगली फल, कटहल, आम, आदि फलों से पूजा कर रहे हैं)।

कुंद मंदार मल्ली सुमन लाइया,
आपके चर्ण को अर्च सुख पाइया।
पूरिये नाथ! मेरी मनोकामना,
पुत्र नारी महल फिर मिले आपना ॥१॥

(पुनः सब इधर-उधर हो जाते हैं। नमि, विनमि राजकुमार राजवेष में तलवार लटकाए आकर भगवान् के चरणों से लिपट जाते हैं)।

नमि–प्रभो! आपने अपना यह साम्राज्य अपने पुत्र-पौत्रों के लिए तो बाँट दिया है किन्तु आपने हम लोगों को तो भुला दिया। हे स्वामिन्! प्रसन्न होइये। हम दोनों को भी अब कुछ भोग सामग्री दीजिए।

विनमि–(हाथ जोड़कर) भगवन्! कृपादृष्टि कीजिए। हम आपसे कुछ न कुछ लेकर ही जाएँगे।

(ये दोनों बार-बार आग्रह करते हैं, जलगंध आदि से पूजा करते हैं, पुनः-पुनः नमस्कार करके याचना करते हैं। इसी बीच आसन कंपायमान होने से धरणेन्द्र आ जाता है और अदृश्य होकर ही इनसे वार्तालाप करता है)।

धरणेन्द्र–(स्वगत) अहो! ये तरुण राजकुमार प्रभु के साले कच्छ महाकच्छ उन्हीं के सुपुत्र हैं। किन्तु देखो तो सही, इन्हें उचित-अनुचित का जरा भी भान नहीं है। ये दोनों भगवान् के ध्यान में विघ्न डाल रहे हैं।

(पुनः अदृश्य होकर कहता है)

नेपथ्य से–

हे युवापुरुषों! कहाँ यह शान्त तपोवन! और कहाँ तुम दोनों के पास में तलवार? अहो! तुम अयोग्य स्थान में भोगों की वांछा क्यों कर रहे हो? प्रभु तो सब कुछ छोड़कर यहाँ आए हैं। ये आत्मसाधना कर रहे हैं, ये भला तुम्हें अब क्या देंगे ? तुम्हें भोगों की सामग्री चाहिए तो राजा भरत के पास जाओ, उनसे माँगो।

दोनों राजपुत्र–(तर्जना करते हुए कड़क कर) अहो! हमारे कार्य के बीच बोलने वाले आप कौन ? आप यहाँ से चुपचाप चले जाइए। गुरु भगवान् ऋषभदेव को प्रसन्न करना हो सबसे उत्तम है। इनकी प्रसन्नता से भला क्या नहीं मिलेगा?

नमि–हम भरत के पास क्यों जाएँ ? भला ऐसा कौन बुद्धिमान है जो कल्पवृक्ष को छोड़कर सामान्य वृक्ष की सेवा करेगा ?

धरणेन्द्र–(स्वगत) ये दोनों महापुरुष भगवान् से ही भोग चाहते हैं। सचमुच में भगवान् की भक्ति भला क्या नहीं दे सकती है। इन्हें विजयार्ध पर्वत पर ले जाकर वहाँ का राजा बना देना चाहिए। (अपना रूप प्रकट कर) अहो! तुम दोनों प्रभु के सच्चे भक्त हो, सुनो, मेरा नाम धरणेन्द्र है। मैं पाताल में रहने वाला भगवान् ऋषभदेव का किंकर हूं। प्रभु ने मुझे आज्ञा दी है कि 'तुम इन दोनों भक्तों को भोग सामग्री से युक्त करो' इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ।

नमि-विनमि–(खुश होकर आश्चर्य से) अच्छा! क्या आप यह बात सच कह रहे हैं ? क्या प्रभु ने ही आपको भेजा है ?

धरणेन्द्र–हाँ, हाँ, अब आप दोनों को प्रभु द्वारा बतलाए हुए इच्छित स्थान पर ले चलूँगा।

(दोनों प्रभु को नमस्कार कर चरण छूकर धरणेन्द्र के साथ चल देते हैं। धरणेन्द्र कुछ देर में दूर से विजयार्ध पर्वत को दिखा कर कहता है)–

धरणेन्द्र–देखो, यह विजयार्ध पर्वत चाँदी का है। इस पृथ्वीतल से एक लाख मील ऊँचा है। इस पर तीन कटनी हैं। प्रथम कटनी पर तो विद्याधर मनुष्य रहते हैं।

नमि–दूसरी कटनी पर कौन है ?

धरणेन्द्र–दूसरी पर आभियोग्य जाति के देवों के भवन बने हुए हैं।

विनमि–और सबसे ऊपर ?

धरणेन्द्र–सबसे ऊपर तीसरी कटनी पर नव कूट हैं, उसमें से पूर्व दिशा के कूट पर अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। यह देखो ध्वजा फहरा रही है। (हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं)। शेष आठ कूटों पर देवों के भवन बने हुये हैं।

दोनों–इसे दिखाने का मतलब ?

धरणेन्द्र–हाँ, सुनो! इस पर्वत की पहली कटनी पर दक्षिण दिशा में ५० नगरियाँ हैं और उत्तर में ६० हैं। इनमें सभी विद्याधर मनुष्य रहते हैं। अच्छा अब चलो...।

(क्षणमात्र में एक नगर में पहुँचकर दो राज्यसिंहासन पर इन दोनों को वहाँ बिठा देते हैं। एक साथ विद्याधर लोग एकत्रित हो गये)।

धरणेन्द्र–हे विद्याधर मनुष्यो! सुनो, ये दोनों आज से तुम्हारे स्वामी हैं। कर्मभूमि को उत्पन्न करने वाले जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव ने इन्हें यहाँ भेजा है। इसलिये आप लोग इनका राज्याभिषेक करो।

(धरणेन्द्र के साथ सभी विद्याधर बड़े-बड़े कलशों से उनका राज्याभिषेक कर देते हैं। धरणेन्द्र दोनों को मुकुट बाँधकर प्रजा से कहते हैं)।

देखो! ये नमि महाराज दक्षिण श्रेणी के स्वामी हैं और ये विनमि महाराज उत्तर श्रेणी के स्वामी हैं। अब तुम सब लोग मस्तक झुकाकर इनकी आज्ञा का पालन करो। और इनके शासन में रहते हुये अनेक अभ्युदयों का अनुभव करो।

(दोनों राजाओं से) नमि-विनमि महाराज! लो ये गांधारपदा और पन्नगपदा नाम की विद्यायें, ये तुम्हें सुख देने वाली हैं। अच्छा तो अब मुझे आज्ञा है।

दोनों राजा–हाँ, ठीक है।

(धरणेन्द्र चला जाता है। अनेक राजा लोग इन दोनों के पास भेंट ले-लेकर आ रहे हैं। नमस्कार कर समर्पित कर रहे हैं)।

नमि–मंत्रियों! यहाँ की कुछ विशेषतायें कहिये ?

एक मंत्री–महाराज! यहाँ सदा कर्मभूमि रहती है। यहाँ पर चतुर्थ काल के आदि से अन्त तक ही परिवर्तन होता है। आपके आर्यखण्ड जैसा छह काल परिवर्तन नहीं होता।

विनमि–ये विद्यायें कैसे सिद्ध करते हैं।

दूसरा मंत्री–एक तो इन्हें माता के पक्ष से ही बहुत-सी विद्यायें मिल जाती हैं। कुछ पितापक्ष से मिल जाती हैं। कुछ ये मंत्र साधना विधि से सिद्ध करते हैं।

तीसरा मंत्री–इन विद्याओं के बल से ये सदा आकाश में विचरण करते रहते हैं। अनेक तीर्थों की, सुमेरु पर्वतों पर जाकर चैत्यालयों की वंदना किया करते हैं।

नमि–यहाँ पर खेती, वर्षा, व्यापार सब चलता है।

मंत्री–हाँ, महाराज! यहाँ असि, मषि, कृषि आदि छहों क्रियाएँ हैं और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये तीनों वर्ण हैं।

विनमि–यहाँ पर प्रजा बहुत ही सुखी है।

मंत्रीगण–महाराज! जहाँ आप जैसे राजा राज्य संचालन कर रहे हैं, वहाँ प्रजा के सुख का क्या कहना।

नमि–इस पर्वत का नाम विजयार्ध क्यों है ?

मंत्री–चक्रवर्ती यहाँ आकर अपनी आधी विजय कर लेते हैं। यहीं से उन्हें स्त्रीरत्न आदि बहुत सामग्री, बत्तीस हजार कन्यायें प्राप्त होती हैं।

इसीलिये इसे विजय-अर्ध = विजयार्घ कहते हैं।

विनमि–(स्वगत) देखो! भगवान् ऋषभदेव की भक्ति से हमें यह लोग, यह पुण्यधरा और राज्य मिला है। अहो! कहाँ हमारा जन्म हुआ था और कहाँ के वैभव का उपभोग कर रहे हैं। इसलिये तो भगवान् की भक्ति कल्पवृक्ष से भी बढ़कर है।

पटाक्षेप

नवमाँ दृश्य

समय–मध्यान्ह

स्थान–शहर का चौक

(भगवान आहारार्थ आये हैं। राजा-महाराजा, प्रजा आदि दर्शनार्थ उमड़ पड़े)।

एक श्रावक–(रत्नों का थाल लेकर) प्रभो! आइये। महल में पधारिये, यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिये।

दूसरा श्रावक–(वस्त्र आभरण आदि लेकर) प्रभो! चलिये स्नान करके यह वस्त्र-आभरण ग्रहण कीजिये।

कुछ लोग–(चरण पकड़ कर) नाथ! दया कीजिये। हे भक्त वत्सल! आज हम लोग आपका दर्शन कर धन्य हो गये।

(भगवान् एक क्षण खड़े हो गये, पुनः चरण छोड़ते ही आगे बढ़ गये, तभी ये लोग खिन्न हो गये)।

राजा–(पालकी, हाथी आदि लाकर) हे त्रिलोकी नाथ! हे युगस्रष्टा! प्रभो! यह पालकी, हाथी, घोड़े वाहन स्वीकार कीजिये।

भगवन्! आप पैदल क्यों घूम रहे हैं ?

दूसरा राजा–(कई कन्यायें लाकर) हे राजाधिराज! इन कन्याओं को स्वीकार कीजिये।

तीसरा राजा–भगवान्! आपको क्या चाहिये ? चलिये राज्य सभा में विराजिये।

हम लोगों को आज्ञा दीजिये। हम लोग क्या करें ?

(भगवान् आगे बढ़ जाते हैं, तब लोग दुःखी होकर सोच रहे हैं)।

एक राजा–(स्वगत) अहो! भगवान् नग्न मुद्रा में पैदल-पैदल क्यों घूम रहे हैं ? इन्हें क्या चाहिये ?

दूसरा श्रावक–(खिन्न वाणी में) ओह! क्या करूँ ? भगवान् को कैसे प्रसन्न करूँ? भगवान् क्या चाहते हैं ?

(हस्तिनापुर में राजा सोमप्रभ राजसिंहासन पर बैठे हैं। युवराज श्रेयांसकुमार प्रवेश करते हैं। सभा के लोग खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं)।

सभासद–युवराज श्रेयांस की जय हो, युवराज श्रेयांस की जय हो।

श्रेयांस–(सोमप्रभ से) हे अग्रज! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने सात स्वप्न देखे हैं। उनमें प्रथम ही सुमेरु पर्वत देखा है।

सोमप्रभ–(प्रसन्न होकर) पुरोहित जी! इनके स्वप्नों का फल सुनाइये।

पुरोहित–युवराज! कहिये वे सातों स्वप्न कौन कौन हैं ?

श्रेयांस–पुराहित जी! सुनिये, प्रथम स्वप्न में सुमेरु पर्वत देखा है। दूसरे में कल्पवृक्ष, तीसरे में सिंह, चौथे में बैल, पाँचवें में सूर्य-चँद्रमा, छठे में रत्नों से भरा समुद्र और सातवें में व्यंतर देवों की मूर्तियाँ।

पुरोहित–हे महाभाग! आपने जो स्वप्न में एक लाख योजन ऊँचा सुवर्णमय सुमेरु पर्वत देखा है, उसका फल यह है कि जिनका उस सुमेरु पर अभिषेक हुआ है और जो स्वयं सुमेरु के समान महान् हैं–पूज्य हैं ऐसे तीर्थंकर महायोगी आज आपका आतिथ्य स्वीकार करेंगे। आप कल्पवृक्ष के समान दाता कहलायेंगे। शेष स्वप्न भी उन्हीं की विशेषता के सूचक हैं।

श्रेयांस–(खुश होकर) हर्ष! अतिहर्ष!! (मुड़कर) हे भ्रातः! तो अब हमें उनके स्वागत की तैयारी करना चाहिये।

(इतने में ही द्वारपाल आता है)

सिद्धार्थ द्वारपाल–(हाथ जोड़कर) हे देव! अपने शहर में महायोगिराज भगवान् ऋषभदेव आ गये हैं। चारों तरफ से लोग उनके दर्शनों के लिये एकत्रित हो रहे हैं।

सोमप्रभ–(हर्ष से गले का हार उतार कर देते हुये) लो सिद्धार्थ! यह शुभ सूचना का पुरस्कार।

(द्वारपाल मस्तक झुकाकर दोनों हाथों से लेकर पुनः कहता है)।

सिद्धार्थ–प्रभो! भगवान् अपने महल की ओर ही आ रहे हैं।

दोनों भाई–(शीघ्र आसन से उठकर) अहो! महान् पुण्योदय का अवसर है, आओ प्रभु का दर्शन करें।

(बाहर निकलते ही प्रभु को देखकर दोनों घुटने टेक कर नमस्कार करते हैं)।

(राजा श्रेयांस चिंतनमुद्रा में एक क्षण खड़े होते हैं, दूसरे क्षण खुश होकर आगे बढ़कर भगवान् का पड़गाहन करते हैं। हाथ में कलश और नारियल लेकर)–

श्रेयांस–(उच्च स्वर से) हे भगवान्! नमोस्तु नमोस्तु, अत्र तिष्ठ-तिष्ठ!!

(भगवान् खड़े हो जाते हैं, ये दोनों भाई और सोमप्रभ की रानी लक्ष्मी तीनों प्रदक्षिणा देते हैं। यहाँ भगवान् का स्टेचू या फोटो दिखाना चाहिये)।

तीनों जन–भगवन्! आहार जल शुद्ध है, महल में प्रवेश कीजिये।

(अंदर लाकर ऊँचा आसन, पाद प्रक्षालन, पूजन आदि करते हैं। इस समय रंगमंच पर कुछ अंधेरा-सा कर देना चाहिये। पुनः स्टेचू में खड़े भगवान् आहार ले रहे हैं। ये तीनों क्रम-क्रम से इक्षुरस करपात्र में दे रहे हैं। सामने आँगन में आकाश से रत्नों की वर्षा, फूलों की वर्षा, सुगन्धित पवन, अनेक बाजे और जय-जयकार तथा 'अहो दानं, अहो दानं' ऐसा

शब्द हो रहा है। यह पंचाश्चर्य वृष्टि है, जो देवगण कर रहे हैं। भगवान आहार लेकर वन की ओर चले जाते हैं। ये दोनों भाई कुछ दूर जाकर पहुँचाकर वापस आकर बरसे हुये रत्न याचकजनों को बाँट रहे हैं।

कुछ ही क्षण में राजा भरत वहाँ आ जाते हैं। दोनों भाई आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं। चक्रवर्ती से गले लगते हैं। पुनः चक्रवर्ती उच्च आसन पर बैठ जाते हैं। ये दोनों भी पास में बैठ जाते हैं)।

भरत–(गदगद् स्वर से) हे महादानपते! हे श्रेयांसकुमार! कहो-कहो! आपने भगवान् का अभिप्राय कैसे जान लिया ?

श्रेयांस–हे देव! भगवान् का दर्शन करते ही मुझे आठवें भव पूर्व का जाति स्मरण हो आया। इसी से मैंने आहारदान की सारी विधि जान ली और भगवान् का पड़गाहन कर लिया।

भरत–ओहो! आज एक वर्ष और २५ दिन के बाद भगवान् की पारणा हुई है...छह महीने तो प्रभु ध्यान में खड़े रहे थे, पुनः छह महीने तक भगवान् आहारार्थ भ्रमण करते रहे, कोई कुछ समझे ही नहीं।

सोमप्रभ–राजाधिराज! ये श्रेयांसकुमार धन्य हैं जिन्होंने आहार की विधि समझ ली।

भरत–(उत्सुकता से) श्रेयांसकुमार! कहो-कहो, तुम्हें क्या जाति स्मरण हुआ ?

श्रेयांस–देव! इस मध्य में असंख्यात् द्वीप समुद्र हैं। उनमें सबसे पहला जंबूद्वीप है। इसमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

भरत–हाँ, विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में सुमेरु पर्वत है।

श्रेयांस–हाँ, प्रभो! भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में ही हम और आप रह रहे हैं।

भरत–हाँ, इस आर्यखण्ड में अयोध्या नगरी को इन्द्र ने ही बनाया था।

श्रेयांस–और भगवान् की आज्ञा से यह हस्तिनापुर आदि नगरियाँ भी इंद्र ने ही बनाई हैं। राजाधिराज! विदेह क्षेत्र ,कच्छ, सुकच्छ आदि बत्तीस विदेह देश माने हैं। उनमें से आठवाँ पुष्प कलावती नाम का एक विदेह क्षेत्र है।

भरत–हाँ, वहाँ सदा कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है।

श्रेयांस–उस विदेह क्षेत्र में एक उत्पलखेट नाम का नगर है। किसी समय वहाँ एक वज्रजंघ राजा रहते थे। उनकी रानी का नाम श्रीमती था। एक समय उन दोनों ने वन में दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों को आहार दान दिया। उस समय राजा के मंत्री, पुरोहित, सेनापति, राजश्रेष्ठी ये चारों खड़े आहार देख रहे थे और वहीं पर कुछ दूर से व्याघ्र, नेवला, बंदर और सूकर ये चार पशु भी आहार देखकर गद्गद हो रहे थे। आहार के बाद वे मुनि वहाँ कुछ देर बैठे तब राजा ने अपने, अपनी रानी के और मंत्री आदि चारों के तथा व्याघ्र आदि चारों पशुओं के यानि सभी के पूर्व भव पूछे, और आगे कौन कब मोक्ष प्राप्त करेगा, यह भी पूछा।

सोमप्रभ–(उत्सुकता से) अच्छा, तो मुनि अवधिज्ञानी थे।

श्रेयांस–हाँ, उनमें से बड़े मुनिराज ने सब कुछ बता दिया। आगे की बातें भी बतला दीं। चक्रवर्तिन्! उस समय जो वज्रजंघ थे, वे ही इस भव में भगवान् ऋषभदेव हुये हैं। और जो उनकी रानी श्रीमती थीं, उन्हीं का जीव मैं श्रेयांसकुमार हुआ हूँ। और जो उस समय उनके मंत्री थे, वे ही आप उनके पुत्र चक्रवर्ती भरत हुये हैं, उनमें से ही वे सातों जीव बाहुबली, वृषभसेन आदि नाम से प्रभु ऋषभदेव के पुत्र यानि आपके भ्राता हुये हैं। उस समय मैंने जो आहार दिया था, उस दान की नवधा भक्ति आदि सारी विधि मुझे आज प्रभु का मुनिमुद्रा में दर्शन करते ही स्मरण में आ गई। वह सारा-का-सारा दृश्य और तब से लेकर आज तक का सम्बन्ध मुझे स्मरण में ऐसा आ रहा है कि मानों मैं साक्षात् ही सब दृश्य आँखों से देख रहा हूँ।

भरत–(खुश होकर) हे कुरुवंश शिरोमणे! आप धन्य हैं। आपके मुख से भगवान् के, आपके और अपने पूर्वभव सम्बन्ध सुनकर मेरा हृदय अत्यंत पुलकित हो रहा है।

सोमप्रभ–इस आहार दान का माहात्म्य तो देखो। आज हमारे घर में यह इक्षुरस अक्षीण हो गया है। सारे नगर में लोगों को पिला देने पर भी ज्यों का त्यों है। और देवों ने रत्नों आदि की पाँच आश्चर्य की खूब वर्षा की है।

भरत–जैसे भगवान् पुरुदेव इस युग की आदि में धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक हैं वैसे ही ये राजा श्रेयांसकुमार भी इस युग की आदि में दानतीर्थ के प्रवर्त्तक हैं। इसलिए आज मैं इन्हें 'दानतीर्थ प्रवर्त्तक' इस नाम से घोषित करता हूँ।

सभासद–'दानतीर्थ प्रवर्त्तक' राजा श्रेयांसकुमार की जय हो। ३ बार जय बोलते हैं।

भरत–आज की यह बैशाख शुक्ला तृतीया 'अक्षय तृतीया' हो गई है। और आज से यह हस्तिनापुर नगरी भी दान का उद्भव स्थल 'तीर्थक्षेत्र' हो गया है।

सोमप्रभ–भला आज के पुण्य दिवस से बढ़कर और कौन-सा पुण्य दिवस हो सकता है ?

भरत–सचमुच में, हे महाभाग! उत्तम पात्र को आहार दान देना और काव्य करना ये दो वस्तुयें बहुत बड़े पुण्य से ही प्राप्त होती हैं।

सर्वप्रजा–(उच्च स्वर से) भगवान् ऋषभदेव की जय हो। दानतीर्थ कर्ता राजा श्रेयांसकुमार की जय हो। सोलहवें मनु सम्राट भरत की जय हो। आज के अक्षय तृतीया पर्व की जय हो। हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र की जय हो।

पटाक्षेप

[द्वितीय अंक समाप्त]

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

समय–प्रातः काल

स्थान–समवसरण सभा

(पुरिमतालपुर के बाह्य उद्यान में भगवान् ध्यान लीन थे। उन्हें केवलज्ञान प्रगट होते ही इन्द्र ने आकर अर्धनिमिष में दिव्य समवसरण बना दिया। चारों तरफ मानस्तंभ हैं। प्रत्येक दिशा में २० हजार सीढ़ियाँ हैं। ऊपर जाकर बारह सभाएँ बनी हैं। जिनमें क्रम से १. मुनिगण, २. कल्पवासी देवियाँ, ३. आर्यिकायें, श्राविकायें, ४. ज्योतिषी देवियाँ, ५. व्यंतर देवियाँ, ६. भवनवासी देवियाँ, ७. भवनवासी देव, ८. व्यंतरदेव, ९. ज्योतिषीदेव, १०. कल्पवासी देव, ११. मनुष्य और १२वें में सिंह, हिरण आदि पशु ये सब बैठकर उपदेश सुनते हैं। इसके ऊपर गंधकुटी में भगवान् चार अंगुल ऊपर विराजमान हैं। देवों का आना, दुंदुभि बाजे आदि बज रहे हैं। इसी समय अयोध्या में राजा भरत को एक साथ तीन समाचार मिलते हैं। चक्रवर्ती भरत सभा में विरामान हैं, एक साथ तीन आदमी पहुँचते हैं)।

पहला पुरुष–(हाथ जोड़कर) हे देव! पूज्य पिता भगवान् श्री ऋषभदेव को केवलज्ञान प्रगट हो गया है।

दूसरा पुरुष–(हाथ जोड़कर) देव! अंतःपुर में पुत्र का जन्म हुआ है।

तीसरा पुरुष–(हाथ जोड़कर) स्वामिन! आयुधशाला में चक्ररत्न

प्रगट हुआ है।

भरत–(स्वगत) ओहो!! तीनों कार्य एक साथ हुए हैं। इनमें से पहले किसका उत्सव करना चाहिए ? (चिन्तन मुद्रा में)

मंत्री–(गद्‌गद स्वर में) राजाधिराज! आज्ञा दीजिए पहले किस उत्सव की तैयारी करें।

भरत–मंत्रियो! पुण्यतीर्थ पूज्य पिता को केवलज्ञान उत्पन्न होना, यह धर्म का फल है। चक्ररत्न का प्रगट होना, यह अर्थ प्राप्त कराने वाले अर्थ पुरुषार्थ का फल है, और पुत्र का होना, यह काम पुरुषार्थ का फल है। अथवा यह सभी धर्म पुरुषार्थ ही पूर्ण फल है क्योंकि अर्थ धर्मरूपी वृक्ष का फल है और काम उसका रस है अतः पहले धर्म कार्य ही करना चाहिए। वही सर्व कल्याणों को प्राप्त कराने वाला है, और बड़े-बड़े फल देने वाला है। इसलिए सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव की पूजा करनी है।

मंत्री–देव! आपके बहुत अच्छे विचार हैं। पहले भगवान् का दर्शन करना ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है। मैं सारे शहर में आनन्द भेरी बजवाये देता हूं।

(मंत्री बाहर जाते हैं। उसी क्षण आनन्द भेरी से सूचना होते ही भरत के भाई, रानियाँ, प्रजा के लोग, सेना आदि एकत्रित हो जाते हैं। गाजे-बाजे के साथ भरत प्रस्थान कर देते हैं। कुछ देर में समवसरण के निकट आकर दूर से ही हाथी से उतर कर नमस्कार करके हर्ष से रोमांचित हो उसमें प्रवेश करते हैं। उधर से पुरिमतालपुर के राजा वृषभसेन, भरत के छोटे भाई भी परिवार और परिकर के साथ आ जाते हैं)।

भरत आदि–ॐ जय, जय, जय, नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।

नमो नमः सत्वहितंकराय, सर्वाय भव्याम्बुज भास्कराय।
अनंतलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥

भरत–हे भगवन्! आपने घातिया कर्मों को नष्ट कर परम दिव्य केवलज्ञान ज्योति को प्रगट कर संपूर्ण चराचर विश्व को जान लिया है। इसलिए आप ही इस जगत के परमपिता परमेश्वर हैं। आपको पुनः-पुनः

नमस्कार हो।

सब मिलकर रत्नों के थाल, अष्ट द्रव्य सामग्री से पूजा करते हैं।)

तोय गंध शालि पुष्प आदि अष्ट द्रव्य ले।
तीन रत्न हेतु आप अर्घ्य से जंजू भले ॥
वर्तमान तीर्थनाथ वंदना सदा....करूँ।
धर्म शुक्ल ध्यान हेतु अर्चना मुदा करूँ ॥
ॐ ह्रीं... ....

(पुनः सब मनुष्य के कोठे में बैठ जाते हैं)।

(इसी क्षण वृषभसेन प्रभु से दीक्षा माँगते हैं)

वृषभसेन–हे जगद्गुरु! हे पूज्य! मुझे आप संसार समुद्र से पार होने के लिए जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।

(एक क्षण के लिए मंच पर कुछ अंधेरा-सा कर देना चाहिए। श्री वृषभसेन दीक्षा लेकर उसी क्षण अवधि, मनःपर्ययज्ञान और अनेक ऋद्धियों से सहित होकर भगवान् के प्रथम गणधर हो गये हैं। समवसरण में गणधर की प्रतिमा रख देना चाहिए। इसी मध्य ब्राह्मी-सुंदरी आकर भगवान् की स्तुति करके दीक्षा याचना करती हैं)।

ब्राह्मी-सुंदरी–हे परमपिता परमेश्वर! स्त्रीलिंग का छेद करने वाली और संसार समुद्र से पार करने वाली ऐसी आर्यिका दीक्षा हमें प्रदान कीजिए।

(इस समय भी कुछ अंधेरा-सा दिखाकर इन दोनों आर्यिकाओं की भी प्रतिमा या चित्र रख देना चाहिये। ब्राह्मी आर्यिकाओं में प्रथम गणिनी हो गई हैं। और भी अनेक राजा-रानियाँ दीक्षा ले रहे हैं। अनंतर भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती हैं, वह 'ऊँकार नाद' रूप है। वह ७१८ भाषा में परिणत हो जाती है। पुनः वृषभसेन उपदेश करते हैं)।

भरत–(हाथ जोड़कर) हे भगवन्! तत्त्वों का स्वरूप क्या है ? मार्ग क्या है? और उसका फल क्या है ? सो आप हम सबके लिए कहिए–

वृषभसेन–हे आयुष्मन्तो! सुनो, भगवान् की दिव्यध्वनि में सभी बातें

खिरी हैं, मैं उनका संक्षेप में वर्णन करता हूँ।

जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप ही तत्त्व है। ये सात हैं—

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, सँवर, निर्जरा और मोक्ष। इनके स्वरूप का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। इनको समझना सम्यग्ज्ञान है और मुनिधर्म या श्रावक धर्म का ग्रहण करना चारित्र है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता ही मोक्ष मार्ग है। इस रत्नत्रय को पूर्ण कर लेने से अक्षय-अविनाशी मोक्षसुख की प्राप्ति हो जाती है। यही इस मार्ग का फल है। इस मार्ग के ही मुनिधर्म और गृहस्थधर्म ये दो भेद हैं। सर्व परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग अथात् दिगंबर हो जाना मुनिधर्म है। और पाँच अणुव्रत का पालन करते हुये पूजा, दान, शील तथा उपवास इन चार धर्म का पालन श्रावक धर्म है।

भरत—हे नाथ! यह संसार कैसा है कितना बड़ा है? और इसमें भ्रमण के कारण और इससे छूटने के कारण भी क्या हैं ?

वृषभसेन—हे भव्यात्माओ! सुनो, यह संसार अनादिनिधन है, जिसमें जीव सदा संसरण-परिभ्रमण किया करता है उसी का नाम संसार है। यह पुरुषाकार है। इसके ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक ये तीन भेद हैं। इसमें नीचे नरक है, ऊपर में स्वर्ग और सिद्ध-शिला है तथा मध्य में मध्यलोक है। मध्यलोक में सर्वप्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है। इसी के भरत क्षेत्र के आर्यखंड में हम आज रह रहे हैं। दूसरा द्वीप घातकीखंड और तीसरे पुष्करद्वीप के ठीक बीच में मानुषोत्तर पर्वत के होने से वह आधा इधर है, आधा उस ओर है। इस मानुषोत्तर पर्वत के इधर-उधर ढाई द्वीपों में ही मनुष्य होते हैं। अतः यहीं तक मोक्ष को प्राप्त करने का पुरुषार्थ किया जा सकता है।

इस संसार में परिभ्रमण का मूल कारण मोह है और इससे छूटने का कारण यह धर्म है। जो जीवों के दुःख से निकाल कर उत्तम सुख में ले जाकर धर दे—पहुँचा दे, उसी का नाम धर्म है। जिन्होंने इस धर्म के बल से कर्म शत्रुओं को जीत लिया है, ये "जिन" हैं। जो इनकी उपासना

करते हैं वे "जैन" कहलाते हैं। यह धर्म अहिंसामय है। प्राणी मात्र का हित करने वाला है। इसीलिए इसे "विश्वधर्म", "सार्वधर्म" या सर्वोदय तीर्थ कहते हैं। हे भव्यो! तुम सब इसे धारण करो, यही संसार के सर्व सुखों को देने वाला है। और परंपरा से निर्वाण को प्राप्त कराने वाला है।

(इसी बीच हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ और श्रेयांसकुमार आकर, दीक्षा लेकर भगवान् के गणधर बन जाते हैं। पहले जो भगवान् के साथ ४ हजार राजा दीक्षित हो भ्रष्ट हो गये थे। उनमें से मरीचि के सिवाय सब आकर भगवान् से दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। मरीचि कुमार पारिव्राजक सन्यासी के वेष में अकेला ही बाहर घूमता हुआ सोच रहा है)।

मरीचिकुमार–(स्वगत) अहो! सभी मेरे साथी, मेरे शिष्य बन गये थे, वे सब प्रभु–मेरे पितामह भगवान् ऋषभदेव की शरण में चले गये हैं। कोई बात नहीं, मैं अकेला ही क्या प्रभु से कम हूँ। जैसे इन्द्रों ने भगवान् ऋषभदेव का चमत्कार किया है, वे हमारा भी करेंगे। मैं भी भगवान् के समान अपना चमत्कार फैलाऊँगा....हाँ, अपने बहुत से शिष्य बनाऊँगा। और.....ऐसा अपना मत चलाऊँगा कि युग-युग तक हमारे अनुयायी सारे विश्व में रहेंगे। ठीक है, यद्यपि मेरे उपास्य मेरे आराध्य एक अकेले पितामह ऋषभदेव ही हैं। फिर भी मैं अपना मत क्यों परिवर्तन करूँ ? क्या हम उनसे कम हैं ? आखिर उन्हीं के तो पोते हैं ?

(भरत आदि समवसरण से बाहर आकर चले जाते हैं। भगवान् का श्रीविहार हो रहा है। चरणों के नीचे कमल खिल रहे हैं। जय-जयकार हो रहा है)।

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

समय–मध्यान्ह

स्थान–अयोध्या शहर का दृश्य

(भरत समवसरण से आकर चक्ररत्न की पूजा करते हैं। पुनः पुत्र जन्म का उत्सव मनाते हैं। अनंतर दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। सामने चक्ररत्न खड़ा है, हाथी खड़ा है, सेना खड़ी है, प्रस्थान के बाजे बज रहे हैं। लोग भरत को आशीर्वाद दे रहे हैं)।

मंत्री–(भरत से) राजाधिराज! आपका प्रस्थान मंगलमय हो, चलिये, उत्तम मुहूर्त में हाथी पर सवार होइये।

(राजा आगे बढ़ते हैं पुरोहित मंगल अक्षत् क्षेपण करते हुये)

पुरोहित–नंद नंद! वर्धस्व वर्धस्व, विजयस्व विजयस्व, षट्खण्ड वसुधा विजयो भव दिग्विजयहेतोः इदं ते प्रस्थानं मंगलं भूयात्।

भरत–मंत्रियो! जिनेंद्रदेव की प्रतिमा का रथ आगे ले लिया है ना!

मंत्री–हाँ, महाराज! और सभी पूजा सामग्री लेकर विद्वान् लोग साथ-साथ चल रहे हैं। सभी रानियों के रथ, पालकियाँ भी सज चुकी हैं। शिविर तंबू वाले आगे-आगे पहुँच गये हैं।

(जोरों से बाजे बजते हैं, सारी सेना भरत के पीछे चल रही है। मध्य में कुछ भजन आदि से अंतराल दे देना चाहिये। भरत ६० हजार वर्ष में संपूर्ण छह खण्ड को जीतकर आ गये हैं। चक्ररत्न अकस्मात् रुक गया। भरत और सेनापति चर्चा कर रहे हैं)।

सेनापति–हे सम्राट! ६० हजार वर्ष में आज तक कहीं भी नहीं रुका वह चक्ररत्न अपने नगर के बाहर अकस्मात् रुक गया है।

भरत–(चौंक कर) ऐं ? यह क्या ? क्या अभी भी मुझे कुछ जीतना शेष है ? पुरोहित जी! कहिये ऐसा क्यों हुआ ?

पुरोहित–(कुछ सोचकर) प्रभो! अभी आपके सभी भ्राता अजेय हैं।

अतः यह चक्ररत्न अयोध्या में प्रवेश नहीं कर सकता है।

(चक्रवर्ती एकांत में मंत्रियों से मंत्रणा कर रहे हैं)।

भरत–अच्छा तो यही ठीक है कि पहले उन अनंतवीर आदि ९८ भाइयों के पास दूत भेजा जाय। देंखे, वे सब क्या करते हैं!

मंत्री–हाँ, महाराज! यही उपाय अच्छा है।

(दूत वहाँ पहुँचकर भरत का संदेश सुना देता है, वे ९८ भाई मिल कर विचार कर रहे हैं)।

अनंतविजय–देखो भइया! अपने को यह राज्य पूज्य पिता जी ने दिया है, अब भरत भइया चक्रवर्ती हो गये हैं। उन्होंने हम सब को बुलवाया है।

अपराजित–हाँ, अब हम सबको आधीनता स्वीकार करनी चाहिये या क्या करना चाहिये ?

वीर–यही तो सोचना है।

वरवीर–हमारी समझ में तो यही आता है कि चलो हम सभी पूज्य पिता के पास ही चलें, उन्हीं से आज्ञा लें, वे जो कहेंगे सो ही करना उचित है।

अनंतविजय–हाँ, यही सबको जँचता है। देखो न, बड़े भाई वृषभसेन ने दीक्षा ले ली, वे भगवान् के प्रथम गणधर हो गये हैं।

(सब चलकर भगवान् के समवसरण में आते हैं। वहाँ पर भगवान् का दर्शन, पूजन आदि करके पूछते हैं)।

सभी पुत्र–दोहा–तीन लोक में श्रेष्ठतम जिनवर विभव प्रधान।
प्रातिहार्य की संपदा तीर्थंकर....पहिचान ॥१॥
अशोक वृक्ष रत्नकाय चित्रवर्ण का....धरै।
हरित मणी की पंक्तियाँ हवा लगे हि थरहरे॥
नवीन कोंपलों समेत राग को स्वयं धरें।
तथापि भक्त के समस्त राग भाव को हरें ॥२॥

पुनश्च–हे देवाधिदेव! हम लोगों ने आपसे ही जन्म पाया है, आपसे ही यह उत्कृष्ट विभूति पायी है और अब भी आपकी ही प्रसन्नता की इच्छा रखते हैं, हम लोग आपको छोड़कर और किसी की उपासना नहीं करना चाहते। इस संसार में सब 'पिताजी का प्रसाद है' ऐसा लोग मात्र कहते हैं। परन्तु हम लोग तो इस वाक्य के रस का अनुभव ही कर चुके हैं

अनंतविजय–नाथ! भरत भइया हम लोगों को प्रणाम करने के लिए बुला रहे हैं, तो इसमें उनका मद कारण है या मात्सर्य, यह हम समझ नहीं पा रहे हैं।

अनंतवीर्य–भगवन्! क्या यह राजहँस मानसरोवर के सुंदर स्वच्छ सुगंधित जल को पीकर अन्य तालाब के पास जाएगा ? हम लोग इस भव में क्या, पर भव में भी आपके सिवाय अन्य किसी को प्रणाम नहीं करेंगे।

सभी पुत्र–इसलिये हे देव! जो मार्ग हितकर हो वही हम लोगों को कहिये।

(इसके बाद भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है, पुनः गणधर-देव कहते हैं।

गणधर–हे आयुष्मंतो! महा अभिमानी, उत्तम शरीर के धारक, श्रेष्ठ बल और गुणों के भंडार तुम लोग उत्तम हाथियों के समान दूसरों के संवाह्य-सेवक कैसे हो सकते हो ? हे पुत्रो ! इस विनाशीक राज्य से और इस नश्वर जीवन से क्या हो सकता है ? अरे! तुमने जिन का कभी अनुभव न किया हो ऐसा कोई सांसारिक विषय है क्या? जब तक पुण्य का उदय है तब तक यह भरत चक्रवर्ती इस भरत क्षेत्र की पृथ्वी का पालन करेगा पुनः यह विनश्वर साम्राज्य भरत के द्वारा भी छोड़ा जायेगा। अतः तुम लोगों का भरत के प्रति क्रोध करना व्यर्थ है। हे भव्यो! जिसमें किसी अन्य के प्रणाम नहीं करना पड़ता तुम लोग ऐसी वीर दीक्षा को धारण करो। जो दूसरों की आराधना से रहित है बल्कि इन्द्र और चक्रवर्ती भी जिसकी

आराधना करने लगते हैं, ऐसा तपश्चरण ही महास्वाभिमानी तुम लोगों के मान की रक्षा करने वाला है।

(इतना सुनकर हर्ष से पुलकित हो सभी ९८ भाई उठकर प्रभु को प्रणाम कर एक साथ जैनेश्वरी दीक्षा ले लेते हैं। इस समय भी मंच पर किंचित् अंधेरा दिखाकर दीक्षित मुनियों के चित्र दिखा देना चाहिए। इधर दूत राजा भरत के पास आकर समाचार सुना देते हैं। भरत मंत्रणा में लगे हैं)।

भरत–(चिंतित मुद्रा में) ओह! मेरे सभी छोटे भाई पिता की शरण में जाकर मुनि बन गये। अब एक अकेले बाहुबली बचे हैं, क्या करना!

मंत्री–सम्राट! बिना बाहुबली के नमस्कार किये यह चक्ररत्न अयोध्या में प्रवेश नहीं कर सकता। अतः आपको उनका अभिप्राय समझने के लिए उनके पास दूत तो भेजना ही होगा।

(दूत भेजते हैं, वह वापस आकर कहता है)

दूत–हे देव! बाहुबली महा अभिमानी है, वे आपका शासन स्वीकार नहीं कर सकते, प्रत्युत युद्ध करने को तैयार हैं।

भरत–(क्रोध से भड़क कर) अच्छा, उसमें इतना साहस!!....ओह! मंत्रियो ! युद्ध की तैयारी करो।

(मंत्री चले जाते हैं)

भरत–(स्वगत) अब क्या करना चाहिए ? मेरी इच्छा तो भाई से युद्ध करने की नहीं है, किन्तु अब कुछ उपाय भी तो नहीं सूझ रहा है।

मंत्री–देव! सेना तैयार है, चलिये।

(भरत प्रस्थान कर देते हैं, दोनों तरफ की सेना में भयंकर हुँकार हो रहा है। सभी मंत्री के परामर्श से सेना का युद्ध न करके दोनों भाई आमने-सामने आकर बात करते हैं)।

भरत–प्रिय भाई बाहुबली! तुम इतने बुद्धिमान, विनीत और मर्यादा को जानने वाले होकर भी ऐसी धृष्टता करोगे, यह मैं कभी पहले सोच

भी नहीं सकता था। ओह! आज तुम मेरा सामना कर रहे हो ?

बाहुबली–अग्रज! पूज्य पिता के दिये हुए मेरे इस अधिकार को आप हड़पना चाहेंगे, मैंने भी यह कभी नहीं सोचा था। खैर! अब यह सब कुछ कहने का समय नहीं है, अब तो दोनों के शक्ति-परीक्षण का ही यह समय है। निर्णय के अनुसार दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध में जो जीतेगा, वही इस छह खंड वसुधा का स्वामी होगा।

भरत–तो ठीक है खड़े हो जाओ सामने।

बाहुबली–हूँ, खड़ा हूँ।

(दोनों भाई एक-दूसरे को अपलक दृष्टि से देखते हैं। भरत कद में छोटे हैं, इनके शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष है। और बाहुबली की ५२५ धनुष। अतः भरत की पलक झपक गई। तब बाहुबली की सेना में जय जयकार के नारे होने लगे। पुनः दोनों भाई सरोवर में उतरे, बाहुबली ने भरत के मुख पर जल के छींटे मारे, भरत हार गये। पुनः दोनों भाई बाहर आकर मल्लयुद्ध करने लगे, इसमें भी बाहुबली ने भरत को उठा लिया। तब भरत ने क्रुद्ध हो चक्ररत्न को लेकर चला दिया। वह अपने गोत्रज को न मारकर उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पास खड़ा हो गया। यह देखकर जनता बोल उठी)।

सभी लोग–बस-बस राजन्! आपका यह साहस बस हो। अरे! भाई के बध करने वाले इस निर्दय कार्य को धिक्कार हो।

बाहुबली–(व्यंग से) आपने खूब ही पराक्रम दिखाया है।

राजागण–हे बाहुबली! आपकी बाहुओं के बल ने आपके नाम को सार्थक कर दिया है। धन्य है आपका पराक्रम।

(भरत लज्जा से मस्तक नीचा कर लेते हैं और बाहुबली उसी क्षण वैराग्य को प्राप्त हो जाते हैं)।

बाहुबली–(स्वगत) मेरे बड़े भाई भरत ने नश्वर राज्य के लिए यह क्या किया ? जब मालूम है कि चक्ररत्न अपने भाई का घात नहीं कर

सकता, फिर उन्होंने यह चक्ररत्न मुझ पर कैसे चला दिया ? (प्रगट) हे अग्रज! जो हुआ सो हुआ, अब आप मेरे अपराध को क्षमा करिये और मुझे जैनेश्वरी दीक्षा लेने की आज्ञा दीजिये।

भरत–(मोह से बाहुबली को हृदय से लगाकर) हे भाई! तुम यह क्या कह रहे हो ? क्या एक भी भाई मेरे साथ नहीं रहोगे ? अभी तुम्हें दीक्षा नहीं लेना है।

बाहुबली–बंधुवर! अब मोह छोड़ो, मुझे आज्ञा दो।

(अपने बड़े पुत्र महाबल को राज्य सौंपते हैं)

पुत्र महाबल! तुम यह राज्य सँभालो, अब मैं वन की ओर जाता हूं।

(बाहुबली वन में जाकर दीक्षा लेकर एक वर्ष का योग लेकर ध्यान में खड़े हो जाते हैं। इधर भरत चक्ररत्न को आगे कर अयोध्या में प्रवेश करते हैं। उनका सम्राट् पद पर राज्याभिषेक होता है, सभी राजा लोग भेंट ले-लेकर आ रहे हैं)।

राजा लोग–सम्राट् भरत की जय हो, चक्रवर्ती भरत का शासन अमर रहे। आदिब्रह्मा के पुत्र सोलहवें मनु राजाधिराज भरत की जय हो।

(बाहर में प्रजा के लोग चर्चा कर रहे हैं)

एक पुरुष–अरे! भगवान् के पुत्र भाई-भाई आपस में राज्य के लिए लड़ सकते हैं तो जनता भला क्या नहीं कर सकती ?

वृद्ध पुरुष–नहीं-नहीं ऐसा नहीं कहना, देखो चक्ररत्न का ऐसा ही नियम है कि जब छह खण्ड के सभी राजा तो क्या देवगण भी उनका शासन स्वीकार कर उन्हें नमस्कार न कर लें तब तक वह राजधानी में प्रवेश नहीं कर सकता! अतः भरत सम्राट् को मजबूरन युद्ध करना पड़ा। नहीं तो वे क्या करते!

दूसरा पुरुष–हाँ, बात यह कि कामदेव बाहुबली को ऐसा नहीं करना चाहिए था।

वृद्ध पुरुष–बात यह है कि ये भी भगवान् के पुत्र थे, स्वाभिमानी थे, वे भी भगवान् के सिवाय अन्य किसी के शासन में कैसे रह सकते थे! अतः उन्हें युद्ध की बुद्धि सूझ गई। भाई ! यह तो सब नियोग था। 'हुंडावसर्पिणी में प्रथम चक्रवर्ती का मान-भंग होना ही था। अतः उनका उदाहरण हमें और आप को लेना उचित नहीं है।

दोनों पुरुष–हाँ, हमारी गलती हुई। अब ऐसा कभी नहीं सोचेंगे। प्रत्युत भाई-भाई के प्रेम हेतु राम-लक्ष्मण का उदाहरण सामने रखेंगे।

वृद्ध पुरुष–हाँ, अब तुम लोगों ने बहुत अच्छा कहा है।

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

समय–प्रातः काल

स्थान–राजमहल

(चारों तरफ से हरे-हरे अंकुरे पड़े हुए हैं, रास्ता बंद है। कुछ लोग इन्हें कुचल कर अन्दर चले गये। कुछ लोग नहीं गये, वहीं खड़े रहे, तब भरत ने उन्हें पीछे के रास्ते से बुलाया और सम्मान देकर पूछा)–

भरत–कहो, तुम लोग सामने के रास्ते से क्यों नहीं आये ?

श्रावक–देव! आज पर्व के दिन हम लोगों ने इन कोंपल, अंकुरे, फूल आदि का विघात नहीं किया, क्योंकि इनमें अनंत निगोदिया जीव रहते हैं। इसलिए हम लोग इस अप्रासुक मार्ग से नहीं आये।

भरत–(प्रसन्न होकर), अच्छा! तुम लोग दयालु श्रावक हो, तुम्हें हम 'ब्राह्मण' यह नाम देते हैं। देखो जो ब्रह्म-आत्मा में चर्या करे। इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप छह क्रियाओं को सतत् करने में तत्पर रहे, उसी का ब्राह्मण यह नाम सार्थक है।

सभी श्रावक–प्रभो! आपकी आज्ञा हमें स्वीकार है। आपके उपदेश और आदेश के अनुसार ही हम प्रवृत्ति करेंगे।

(सब चले जाते हैं)

(राजसभा में भरत बैठे हैं, मंत्रियों से वार्तालाप कर रहे हैं)

भरत–मंत्रियो! मेरे मन में एक दिन सहसा यह चिंता उत्पन्न हुई कि अपनी इस अटूट संपदा का पर के उपकार में कैसे उपयोग करना ? निर्ग्रंथ मुनि तो करपात्र में आहार लेते हैं। अतः उन्हें तो कुछ दे नहीं सकते, और ग्रहस्थ भी हम लोगों से दानरूप में क्या लेगा ? अतः व्रती श्रावकों को ब्राह्मण बनाकर उन्हें इच्छित धन, सवारी, वाहन आदि दान देकर तृप्त करना चाहिये। इसलिये हमने यह ब्राह्मण नाम का चौथा वर्ण स्थापित किया है।

मंत्री–देव! आप ऋषभदेव से उत्पन्न हुये हैं और सोलहवें मनु कुलकर कहलाते हैं। आपके द्वारा स्थापित यह वर्ण सर्वमान्य होगा।

भरत–मंत्रियो! मैंने इन्हें नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पद्रुम और आष्टान्हिक इन चार प्रकार की जिन पूजा विधि का उपदेश दिया है। त्रेपन क्रियाओं का भी उपदेश दिया है, जिसमें गर्भाधान से लेकर निर्वाण तक सभी क्रियाओं का विस्तार से वर्णन है। दीक्षान्वय क्रिया के ४८ भेदों को समझाकर कर्त्रन्वय क्रियायें सात हैं, जिन्हें सात परम स्थान कहते हैं, इन सबको अच्छी तरह समझा दिया है। अब इन सभी गृहस्थों को दान देकर सम्मानित करना चाहिये। तुम ऐसी घोषणा कर दो।

मंत्री–जो आज्ञा महाराज!

(सभा विसर्जित हो जाती है। कुछ क्षण बाद महाराज भरत महल में सोकर उठे हैं। चिंता कर रहे हैं)।

भरत–(स्वगत) अहो! आज मैंने जो भी स्वप्न देखे हैं, इनका फल कब होगा? क्या होगा? ओह! भगवान् केवल ऋषभदेवरूपी सूर्य के रहते हुये चिंता किस बात की। मैं समवसरण में चलकर प्रभु के मुख कमल से ही सब कुछ सुनकर अपनी जिज्ञासा शांत करुँगा। (प्रगट) मंत्रियो! भगवान् के दर्शन के लिये चलना है।

मंत्री–बहुत अच्छा देव!

(आनंद भेरी बज रही है। सब परिवार के लोग पूजा सामग्री लेकर तैयार हैं। भरत समवसरण में पहुँचकर भगवान् का दर्शन पूजन कर रहे हैं)।

भरत–

जय-जय तीर्थंकर शिवसुखकर, जय-जय अनवधि गुण सागर हो।
जय-जय सुख ज्ञान अतींद्रियधर, जय-जय अनुपम रत्नाकर हो॥
तुमने मृत्युंजय बनने का सबको, सुखकर उपदेश कहा।
जिसने तुम आज्ञा को पाला, उसने मृत्यु का क्लेश दहा ॥१॥

(भक्ति में लीन भरत को अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। मनुष्य के कोठे में जाकर बैठते हैं)।

हे भगवन्! मैंने श्रावकाचार में निपुण ऐसे ब्राह्मण निर्माण किये हैं। ये आपके द्वारा बताये हुए उपासकाध्ययन सूत्र के मार्ग पर चलने वाले हैं।

हे प्रभो! समस्त धर्मरूपी सृष्टि को साक्षात् उत्पन्न करने वाले आपके विद्यमान रहते हुये भी मैंने यह बहुत बड़ी मूर्खता की है, जो यह नई सृष्टि बनाई है।

हे नाथ! इसमें क्या तो दोष है और क्या गुण है ? यह मुझे बतलाइये। हे परमपिता परमेश्वर! इसके अतिरिक्त आज रात्रि के अंतिम भाग में मैंने जो सोलह स्वप्न देखे हैं उनका फल भी क्या है ? सो यह सब मैं आपकी दिव्यध्वनि से सुनना चाहता हूँ ?

(भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है। पुनः गणधरदेव कहते हैं)

गणधर–हे आयुष्मन्! भगवान् ने दिव्यध्वनि से जो उपदेश दिया है सो ही मैं तुम्हें कहता हूँ। जो तुमने द्विजों की रचना की है सो अच्छा किया है, परन्तु इसमें कुछ दोष हैं। सो जब तक कृतयुग रहेगा, तब तक ये उचित आचार का पालन करेंगे। किन्तु कलयुग में ये सदाचार से च्युत होकर प्रायः

मोक्षमार्ग के विरोधी बन जायेंगे। यद्यपि यह सृष्टि कालांतर में दोष का बीजरूप है, तथापि धर्मसृष्टि का उल्लंघन न हो इसलिये इनका परिहार करना अच्छा नहीं है। यह तो एक नये वर्ण की बात हुई। अब स्वप्नों का फल क्रम से सुनो–

१. प्रथम स्वप्न में जो तुमने "तेईस सिंह अकेले पृथ्वी पर विहार कर पर्वत पर चढ़ गये" ऐसा देखा है, उसका फल यह है कि अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी को छोड़कर शेष तेईस तीर्थंकरों के समय दुष्ट नयों की उत्पत्ति नहीं होगी।

२. दूसरे स्वप्न में "अकेले सिंह के बच्चे के पीछे चलते हुये हरिणों का समूह" देखा है, सो महावीर स्वामी के तीर्थ में परिग्रह धारक बहुत से कुलिंगी हो जावेंगे।

३. "खड़े हाथी के भार को घोड़े की पीठ पर लाद देने से उसकी पीठ झुक गई है" इस तृतीय स्वप्न से ऐसा समझो कि पंचमकाल में साधु तपश्चरण के समस्त गुणों को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।

४. चतुर्थ स्वप्न में "बकरों का समूह सूखे पत्ते खा रहा है" इससे ऐसा समझे कि आगामी काल में लोग सदाचार को छोड़कर दुराचारी बन जायेंगे।

५. "हाथी के कंधे पर वानर चढ़े" ऐसा देखने से आगे चलकर प्राचीन क्षत्रियवंश का उच्छेद हो जायेगा और नीच कुल वाले पृथ्वी का पालन करेंगे।

६. "कौवे, उल्लू को त्रास दे रहे हैं" देखने से आगे काल में मनुष्य जैन मुनियों को छोड़कर अन्य पाखंडियों के समीप जायेंगे।

७. "नाचते हुये बहुत से भूतों को देखने से" प्रजा के लोग नाम कर्म आदि कारणों से व्यंतरों को देव समझकर उनकी उपासना करने लगेंगे।

८. "तालाब के चारों ओर पानी भरा है, किन्तु बीच का भाग सूख गया" ऐसा देखने से धर्म आर्यखण्ड से हटकर प्रत्यंतवासी म्लेच्छ निवासी लोगों में ही रह जायेगा।

९. "धूलि से मलिन रत्नों की राशि" देखने से पंचमकाल में ऋद्धिधारी उत्तम मुनि नहीं होंगे।

१०. "आदर-सत्कार से जिसकी पूजा की गई है, ऐसा कुत्ता नैवेद्य खा रहा है।" इसका फल यह है कि व्रत रहित द्विज गुणी पात्रों के समान आदर पायेंगे।

११. "ऊँचे स्वर से शब्द करता हुआ तरुण बैल विहार कर रहा है" देखने से तरुण अवस्था में ही मुनिधर्म ठहर सकेगा, अन्य अवस्था में नहीं।

१२. "परिमण्डल से घिरे हुए चंद्रमा को देखने से" पँचमकाल में मुनियों में अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान नहीं होगा।

१३. "परस्पर मिलकर जाते हुए दो बैलों को देखने से" ऐसा समझो कि पंचमकाल में मुनिगण साथ-साथ विहार करेंगे, अकेले विहार करने वाले नहीं होंगे।

१४. चौदहवें स्वप्न में "सूर्य मेघों के आवरण से ढक गया है" ऐसा देखने से यह समझो कि पंचमकाल में केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय नहीं होगा।

१५. "छाया रहित सूखा वृक्ष देखने से" यह समझो कि प्रायः स्त्री-पुरुषों का चरित्र भ्रष्ट हो जायेगा।

१६. सोलहवें स्वप्न में जो तुमने "जीर्ण पत्तों का ढेर" देखा है, सो उसका फल यह है कि महाऔषधियों का रस नष्ट हो जायेगा, ये नीरस हो जाने से रोगों को नष्ट करने में पूर्णतया समर्थ नहीं हो सकेंगी।

हे भरत! ये १६ स्वप्नों के फल बहुत समय बाद पंचमकाल में फल देने वाले होंगे। ऐसा तुम समझो, तथा जो भी मैंने फल बताया है, उनमें भी कई एक स्वप्नों का फल सर्वथा सभी में नहीं घटेगा, क्योंकि पंचमकाल के अंत तक स्त्री-पुरुषों में भी चरित्रवान रहेंगे। अतः इनका फल प्रायः रूप में घटित करना चाहिए। इसलिये इस समय कोई दोष नहीं होगा, फिर भी हे वत्स! तुम सर्व विद्वानों की शांति के लिये उपाय करो।

(यह सब सुनकर भरत बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने बार-बार भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। अनंतर भरत के ९२३ पुत्र जो कि गूंगे थे, वे सभा में आकर भगवान् का दर्शन कर बोलने लगे, स्तुति पढ़कर पुनः सभा में बैठकर भगवान् से बोले)–

सभी पुत्र–

जयो जिनेश! आप ही अनंत ज्ञानपुंज हो।
जयो जिनेश! आप ही अनंत दर्शकुंज हो ॥
जयो जिनेश! आप ही अनंत वीर्यवान हो।
जयो जिनेश! आप ही अनंत सौख्यधाम हो ॥१॥
प्रभो! अपूर्व भक्ति से करूँ सदैव वंदना।
प्रभो! अपूर्व शक्ति हेतु मैं करूँ उपासना ॥
प्रभो! मुझे स्वभक्त जान के संभाल लीजिए।
प्रभो! स्वयं तीन रत्न दे खुशाल कीजिये ॥२॥

दोहा–निजानंद पीयूषरस निहारिणी निमग्न।
परमानंद सुख सांसण, दे मुझे करो प्रसन्न ॥३॥

(पुनः ये सब मनुष्य के कोठे में बैठ जाते हैं)

सभी पुत्र–हे भगवान्! अनंत निगोद से निकलकर हम लोग आज आपके दर्शन करके कृतार्थ हो गये हैं। हे दयानिधे! अब आप हमें जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिये।

(भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है, पुनः गणधर उपदेश देते हैं)।

गणधर–हे आयुष्मन्तो! आप महापुण्यशाली हैं जो कि नित्य निगोद से निकलकर इस मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए हैं। आप गूँगे थे, फिर भी भगवान् के अतिशय से बोलना आ गया है। अब तुम सब जैनेश्वरी दीक्षा लेकर आत्मसाधना करो, तुम लोग इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे।

(यह सुनते ही वे सब प्रसन्न होकर राजा भरत से आज्ञा लेकर दीक्षा ले लेते हैं। कुछ क्षण बाद सेनापति जयकुमार अपनी पत्नी सुलोचना सहित

आकर दीक्षा लेकर भगवान् के गणधर हो जाते हैं। सुलोचना आर्यिका भी ग्यारह अंग की ज्ञाता हो जाती हैं। और भी अनेक राजागण, रानियाँ, श्रावक और श्राविकायें कोई दीक्षा ले रहे हैं, कोई क्षुल्लक-क्षुल्लिका के व्रत ले रहे हैं। कोई अणुव्रती श्रावक-श्राविकाओं के व्रत ले रहे हैं। समवसरण में भक्ति, पूजा, वंदना आदि का कोलाहल हो रहा है। कुछ क्षण बाद समवसरण से भगवान् विहार कर देते हैं। आगे पहुँचते ही पुनः समवसरण बन जाता है। इस प्रकार सारे आर्यखण्ड में विहार करते हुए भगवान् का एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम एक लाख पूर्व का लम्बा समय व्यतीत हो चुका है)।

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

समय–प्रातःकाल

स्थान–कैलाश पर्वत

(समवसरण विघटित हो चुका है। वृषभसेन, श्रेयांस, सोमप्रभ, जयकुमार आदि ८४ गणधर हैं। ८४ हजार महामुनि सभा में हैं, जिनमें २० हजार मुनि तो केवली हैं। ३ लाख पचास हजार आर्यिकायें हैं, जिनमें ब्राह्मी आर्यिका प्रमुख गणिनी है। श्राविकायें पाँच लाख हैं, उनमें सुव्रता श्राविका प्रमुख है। भवनवासी आदि चारों प्रकार के देव-देवियाँ असंख्यातों है। सिंह, हरिण, आदि पशु भी बैठे हुए हैं। सभी हाथ जोड़कर बैठे हैं। सौधर्म इन्द्र भी अपनी इन्द्राणियों और परिकर के साथ उपस्थित हैं। आज पौष शुक्ला पूर्णिमा का दिवस है। भगवान् को मोक्ष जाने में १४ दिन मात्र शेष हैं। इधर अयोध्या के राजा भरत पिछली रात्रि में कुछ स्वप्न देखते हैं, सो प्रातः पुरोहित से वार्तालाप कर रहे हैं)।

भरत–पुरोहित जी! आज पिछली रात्रि में मैंने स्वप्न देखा है कि महामेरु पर्वत अपनी लम्बाई से सिद्धक्षेत्र तक पहुँच गया है।

(उसी समय अर्ककीर्ति और सुभद्रा रानी भी आकर पूछते हैं)।

सुभद्रा–पुरोहित जी! मैंने स्वप्न में देखा है कि इन्द्राणी माता यशस्वती और सुनंदा के साथ बैठी हुई शोक कर रही हैं।

अर्ककीर्ति–हे विप्रवर! मैंने भी ऐसा देखा है कि महौषधि वृक्ष मनुष्यों के जन्म-रोग को नष्ट कर स्वर्ग को जा रहा है।

पुरोहित–हे देव! ये सभी स्वप्न यह सूचना दे रहे हैं कि भगवान् ऋषभदेव सभी कर्मों को नष्ट कर अनेक मुनियों के साथ मोक्ष जाने वाले हैं।

(इस बीच आनंद नाम का किंकर आकर कहता है)

आनंद–(हाथ जोड़कर) राजाधिराज! भगवान् ऋषभदेव ने अपनी दिव्यध्वनि संकोच ली है। इसलिए संपूर्ण सभा हाथ जोड़कर बैठी हुई है। वहाँ इस समय ऐसा मालूम पड़ रहा है कि मानों सूर्यास्त के समय निमीलित कमलों से युक्त सरोवर ही हो।

भरत–(हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुये) तो अब हमें भगवान् का दर्शन करने शीघ्र ही चलना है।

(आनंद भेरी बजते ही सब एकत्रित हो चक्रवर्ती के साथ चल पड़ते हैं)। कैलाश पर्वत पर आकर भरत दूर से ही हाथी से उतर कर पैदल चलकर आकर भगवान् की प्रदक्षिणा करके पुनः-पुनः नमस्कार करते हैं। (पूजा सामग्री लेकर "महामह" नाम की पूजा शुरू कर देते हैं। पुनः वे बराबर चौदह दिन तक अखंड पूजा कर रहे हैं)।

भरत–(पूजा करते हुये)–

देवगंगा सलिल स्वर्ण झारी भरूँ।
नाथ पादाब्ज में तीन धारा करूँ ॥
श्री ऋषभदेव पुरुदेव जिनराज को।
पूजते ही लहूँ स्वात्म साम्राज को ॥

ॐ ह्रीं.....

.....(कुछ गुनगुनाने के बाद)

(हाथ जोड़कर)

वसंततिलकाछंद—देवाधिदेव तुम लोक शिखामणी हो।
त्रैलोक्य भव्यजन कंज विभामणी हो ॥
सौ इन्द्र आप पदपंकज में नमें हैं।
साधु समूह गुणवर्णन में रमें हैं ॥१॥
जो भक्त नित्य तुम पूजन को रचावें।
आनंद कंद गुणवृंद सदैव गावें ॥
वे भक्त अंत बस केवलज्ञान पावें।
मुक्त्यंगना सह रमें शिवलोक जावें ॥२॥

(पुनः कुछ क्षण बाद)

अन्य भक्तगण—हे नाथ! मेरी पूरिये बस एक कामना।
ना होवे फेर फेर यहाँ भव में आवना॥

भगवान् पूर्व दिशा की ओर मुख करके अनेक मुनियों के साथ पर्यंकासन से विराजमान हं। माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुभ मुहूर्त में और अभिजित् नक्षत्र में भगवान् शेष अघातिया कर्मों का नाश कर एक समय मात्र में लोक के अग्रभाग में पहुँच कर वैसे ही शरीर से किंचित् कम आकार वाले पर्यंकासन से ही वहाँ विराजमान हो जाते हैं। उसी क्षण चार प्रकार के देवों के यहाँ सभी प्रकार के बाजे बिना बजाये बजने लगते हैं। इन्द्रों के आसन कंपायमान हो उठते हैं। सौधर्म इन्द्र तो यहीं थे, फिर भी वहाँ से सभी इन्द्र वैभव के साथ भगवान् के मोक्ष कल्याणक की पूजा के लिए यहाँ आ जाते हैं। जय-जयकार के नारे से आकाश गूँज उठता है।

इन्द्र—यह भगवान् का शरीर अतिशय पवित्र है, उत्कृष्ट है, मोक्ष का साधन है, स्वच्छ और निर्मल है।

(ऐसा कहकर इन्द्र उस शरीर को पालकी में विराजमान करते हैं)।

अग्निकुमार इन्द्र अपने मुकुट से अग्नि प्रगट कर उस शरीर का संस्कार कर रहे हैं। बीच में तीर्थंकर अग्नि के लिए चौकोर कुंड है। उसके दाहिनी ओर गणधर कुंड है, यह त्रिकोण है तथा बाईं ओर केवली कुंड है, यह चौकोण है। इन तीनों कुंडों में अग्नि स्थापित कर उस अग्नि की पूजा करते हैं। पुनः इन्द्र स्वयं उस भस्म को लेकर ललाट, वक्षस्थल और मस्तक आदि से लगाते हुए कहते हैं–

इन्द्र–हम लोग भी ऐसे ही हों।

(सभी देव-देवियाँ भी भस्म लगाकर थोड़ी-थोड़ी अपनी डिब्बी में रख लेते हैं। पुनः इन्द्र "आनंद" नामक नाटक करते हैं। पुनः श्रावकों को उपदेश देते हैं)।

इन्द्र–हे सप्तम् प्रतिमाधारी सभी ब्रह्मचारियो! तुम लोग तीनों संध्याओं में स्वयं गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन अग्नियों की स्थापना करो और उनके समीप ही जिनप्रतिमा को धर्मचक्र तथा छत्र को स्थापित करके सदा मंत्रपूर्वक उनकी पूजा करो। इस प्रकार गृहस्थों के द्वारा आदर-सत्कार पाते हुये अतिथि बनो।

(पुनः सब देवगण चले जाते हैं। भरत दुःखी मन से बैठे हैं। देखकर गणधर वृषभसेन उन्हें उपदेश देते हैं)।

गणधर–हे भरत! तुम तो अतिशय बुद्धिमान, क्षायिक-सम्यग्दृष्टि, देशव्रती और अवधिज्ञानी हो। संसार की स्थिति को अच्छी तरह समझते हो। पुनः तुम शोक क्यों कर रहे हो ? हे निधिपते! भगवान् तो सदा अपने हृदय में विराजमान हैं। अतः अब तुम शीघ्र ही शोकरूपी अग्नि को ज्ञानरूपी जल से शान्त करो। देखो, भगवान् तो सर्व कर्मों से छूटकर जन्म-मरण के दुःखों से मुक्त होकर परमानंद परमधाम को प्राप्त हो चुके हैं। हमें और तुम्हें भी तो यही परम स्थान प्राप्त करना है। यही भावना भाओ। देखो, इन्द्रों ने तो प्रभु के निर्वाण गमन में खुश होकर "आनंद" नाम का नाटक

किया है। नृत्य, गीत, संगीत से भगवान् के गुणों की पूजा की है। इसलिये आप भी शोक न करके हर्षित होते हुए पूज्य परम पिता के गुणों का स्मरण करते हुये उनके निर्वाण प्राप्ति में आनन्द मनाओ।

भरत--(शांत होकर) भगवन्! आपके उपदेश से अब मेरा मन शांत हो गया है। हमें भी यह दिन शीघ्र ही प्राप्त हो। आपका दर्शन भी हमें पुनः-पुनः मिलता रहे।

(ऐसा कहकर गुरुओं को नमस्कार कर उठते हैं। प्रस्थान करते हैं। सब मिलकर मंगल गान कर रहे हैं)।

मंगल-गीत

जब तक सुमेरु इस धरा पे अचल रहेगा।
तब तक ये जैनधर्म भी जयशील रहेगा ॥
यह धर्म सबको मित्रता का पाठ पढ़ाता।
धर्मी जनों के प्रति सदा ये मोक्ष कराता ॥
जो धर्म की.....
जो धर्म की नौका चढ़े भवदधि वो तिरेगा ॥तब तक ०॥
यह दीन दुखी के प्रति करुणा को सिखाता।
प्रतिकूल जनों के प्रति मध्यस्थ बनाता ॥
यह विश्व में.....
यह विश्व में सुख-शांति का साम्राज्य करेगा ॥तब तक ०॥
इस धर्म का है मूल अहिंसा परम धरम।
इस धर्म कल्पवृक्ष की सब लीजिये शरण ॥
यह सबकी.....
यह सबकी ज्ञानमति विभूति पूर्ण करेगा ॥ तब तक ० ॥
जब तक सुमेरु इस धरा पे अचल रहेगा।
तब तक ये जैनधर्म भी जयवंत रहेगा ॥

पटाक्षेप

श्री तृतीय अंक समाप्त